॥ श्रीकनकभवन विहारिणी विहारिणौ विजयेते ॥

—: श्री :—

सिद्धान्त-मुक्तावली

रचयिता :—

रसिकाचार्य रत्न श्रीजनकराजकिशोरीशरणजी महाराज

उपनाम- श्रीरसिकअलिजी

टीकाकार :—

शत्रुहन शरण

-।। श्रीजानकीवल्लभो विजयतेतराम् ।।-

अनन्त श्रीसद्गुरु चरणकमलेभ्यो नमः ।

श्रीजानकीवल्लभो विजयते ।

अनन्त श्रीपूर्वाचार्येभ्यः नमः ।

श्रीमत्यै सर्वेश्वर्य्यै चारुशीलायै नमः ।

श्रीमन्मारुतनन्दनाय नमः ।

भगवते श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ।

श्रीमते अग्रदेवाचार्याय नमः ।

श्रीमिथिला कमलादिव्याभ्यां नमः ।

श्रीअवध सरयू दिव्याभ्यां नमः ।

श्रीसिद्धान्त-मुक्तावली

रचयिता :—

रसिकाचार्य रत्न श्री स्वामी जनकराज किशोरीशरणजी

महाराज, श्रीरसिकअलिजी

प्रकाशक :—

श्रीकिशोरीशरणजी, मधुकर ।

श्रीअग्रभवन-स्वर्गद्वार, श्रीअयोध्याजी ।

यहाँसे यह पुस्तक प्राप्य भी रहेगी ।

प्रथम संस्करण ५००] १९८४ [निछावर ७)

❀ श्रीमन्मारुतनन्दाय नमः ❀

—ः भूमिका ः—

प्रस्तुत श्रीसिद्धान्त-मुक्तावली ग्रन्थोत्तमके लब्धप्रतिष्ठ सुलेखक हैं, मधुररसके विशिष्टआचार्य, वन्द्यपादाम्बुज श्रीरसिक-अलिजी। मधुरउपासनाके साधकोंकेलिये परमोपादेय एवं आचरणीय सिद्धान्तोंका यहाँ संक्षिप्त परन्तु सारगर्भित विवेचन है। इस रसके साधकोंका साध्य होता है, नित्यकनकमहलटहलकी प्राप्ति एवं साधन होता है, रसिकगुरु उपदिष्ट भजन-भावना। प्रारम्भिक रसिक साधककी भजन-भावनाको अनुशासित करके, उसे सुव्यवस्थित रीतिसे सीधे लक्ष्यकी ओर गतिमान करानेका काम है, रसिकाचार्य निरूपित रससिद्धान्तोंका। अतः सिद्धान्तों की आवश्यकता अपनी जगहपर अपरिहार्य है।

श्रीसिद्धान्त-मुक्तावलीके पूर्वभागमें रसोपासना जिज्ञासु को उपदेश दिया गया है कि वह सुयोग्य सद्गुरु खोजकर, उनसे पञ्चसंस्कारपूर्वक मन्त्रदीक्षा प्राप्त करें। तत्पश्चात् सभी संस्कारोंको सदैव धारणपूर्वक उपदिष्ट श्रीयुगल मन्त्रराजका सविधि जप करे। अपने इष्टमेंही अनन्यभावसे अनुरक्त रहने के लिये आपके श्रीनामरूप लीलाधामके परत्वका सदैव मनन करता रहे।

उत्तरभागमें दीक्षित साधकको नित्यब्रह्मसम्बन्ध सद्गुरु द्वारा उद्बोधितकर, तदनुकूल अपना कर्त्तव्य पालनपर जोर दिया

गया है। यथार्थ शरणागति एवं सर्वप्रकारसे आत्मसमर्पण बनता है श्रीमधुर रसके साधकोंकेही द्वारा। अतः शरणागति धर्मका अवलम्बनकर उसे परिपुष्ट बनानेकेलिये अपने सर्वसमर्थ इष्टके शरणागतोपयोगी गुणगणोंका चिन्तन आवश्यक बताया गया है।

उपासनाशब्दका अर्थ, अन्य उपासनाकी अपेक्षा श्रीसीतारामोपासनाका वैशिष्ट बताकर, भक्ति तथा भक्ति अन्तर्गत प्रेम, स्नेह, प्रणय, अनुराग आदिके लक्षण बताये गये हैं।

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर पाँचो भक्ति-रसोंके अंगोंका वर्णनकर, रसोंके पारस्परिक वैर, मैत्र्य एवं तटस्थ रसोंपर विचारकर ग्रन्थ समाप्त किया गया है।

जिन साधककी भजन-भावनासे समय निकालकर रहस्य ग्रन्थ पढ़नेका समय न मिलता हो, उनके लिये यह स्वल्पकाय ग्रन्थ बहुत उपयोगी होंगे। जिन्हें प्रातःस्मरणीय पूर्वाचार्योंकी महावाणीमें विशेष श्रद्धा हो तथा उनके स्वाध्यायके लिये अवकाश हो, उन्हें सिद्धान्त बिषयक सर्वाङ्गपूर्ण ग्रन्थ श्रीअनन्यचिंतामणि परमरसिकाचार्य पूज्यपाद श्रीमत्कृपानिवास स्वामी द्वारा विरचित अवश्य पढ़ना चाहिये। इसमें अन्यान्य साधनोंकी अपेक्षा मधुर उपासनाका वैशिष्ट्य, रसिकेतर मतोंका खण्डन, पाँचो ब्रह्मसम्बन्धोंमें शृंगारभावकी श्रेष्टता बतायी गयी है। अनन्यरहस्य, युगल उपासना, शरणागति रहस्यका बिवेचन स्वकीयादि भावोंपर विमर्श, मानरहस्य, रसांगोपर विचार, दिव्य धाममें सपरिकर युगलकिशोरकी झाँकी वर्णनपूर्वक ग्रन्थ समाप्त

किया गया है। एक और परमोत्कृष्ट सिद्धान्त ग्रन्थ है, प्रातः स्मरणीय विशिष्ट रसिकाचार्य श्रीबाल अलिजी द्वारा विरचित सिद्धान्त तत्व दीपिका।

इसमें वर्णन है—श्रीप्रभावतीनाम्नी विशुद्धस्वरूपा जीवा-शक्तिका माया परवश पतन। अनेक योनियोंमें भ्रमणकर अंत में सुमुखीनामक राजकन्या रूपमें अवतरित हुई। प्रभुप्रेरित उसे कृपावती नामक सद्गुरुकी प्राप्ति हुई। उनसे पञ्चसंस्कारपूर्वक मन्त्रदीक्षा ग्रहण, उनसे उपासना की सांगोपांग विधि जानकर, सविधि साधन करके अन्तमें दिव्यमहलवासकी प्राप्ति की। उसी की जीवनीके व्याजसे सभी आवश्यक सिद्धान्तोंका वर्णन विशद रूपसे यहाँ आपको मिलेगा।

इन पंक्तियोंका तुच्छ लेखक कोई विद्वान् तो है नहीं। देववाणी संस्कृत भाषासे कोरा अनभिज्ञ। विशिष्ट साम्प्रदायिक ग्रन्थोंकी राशि तो है संस्कृत वाङ्मय। ऐसा अनजान किसी निगूढ़ ग्रन्थकी टीका क्या करेगा? थोड़ा बहुत प्रवेश है तो पूर्वरसिकाचार्योंकी हिन्दी भाषाकी महावाणियोंमें। वहीतो जीवन सम्बल हैं। उन्हींके प्रकाशमें इसने प्रस्तुतग्रन्थोंके अर्थोंपर विचार किया है। भूलोंकी भरमार सहज सम्भव है, मूलग्रन्थ अल-बत्त! परमोत्कृष्ट हैं। वही साधकोंके साधन पथको आलोकित करेंगे। पुष्पके साथ पुष्पकीटभी देवमस्तकपर पहुँच जाता है।

इसके पहले पं० अवधकिशोरदासजी महाराज इसपर टीका कर चुके हैं। आप साम्प्रदायिक ग्रन्थ लेखकोंमें महारथी हैं। आपकी टीका सब प्रकारसे प्रशंसनीय है।

जिन उदार सज्जनोंके आर्थिक सहयोगसे प्रस्तुत सटीक ग्रन्थका प्रकाशन संभव बना है, उनके श्लाघ्य नाम सधन्यवाद लिखे जाते हैं—

१- योगिराज श्रीभगवतदासजीमहाराज, सरवारनगर (म०प्र०)।

२- श्रीसीताशरण गुप्त, समथर जिला-झाँसी ।

३- श्रीसियारामशरण गुप्त, चिरगाँव ।

श्रीलाडलीलालशरण, अग्रभवन-स्वर्गद्वार, श्रीअयोध्याका सहयोग भी कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करते हैं ।

-॥ भूल सुधार ॥-

पृ० ६७में आये हुये दोहा ५८के अर्थ करते समय मैंने वारांगनाओंका नृत्य राजसभामेंही संभव बताया है, परन्तु पीछे पतालगा कि वारांगनाओंका नृत्यतख्त ५/६ फीट ऊँचा पहियादार संचल होता है। हाथीपर राजसवारीके आगे-आगे चलनेवाले उसी तखतपर वह नर्तकी अपने वहीं बैठे हुये वादक गायक-समाजके साथ नृत्य करती जाती है। विदूषक भी आगे-आगे स्वांगपूर्वक प्रहसनचेष्टा करते चलते हैं।

श्रीरसमोदकुञ्ज, श्रीअयोध्याजी
भादो शुक्ला एकादशी
सं० १६४१ वि०

रसिकसज्जनों लघु अनुचर
शत्रुघ्न शरण

—ः सूची-पत्र ः—

पूर्व भागः—

क्रमांक	विषय	पृष्टाङ्क
२१-	श्रीरामधाम परत्व	८२
२२-	श्रीमणिपर्वत, सोमस्त्रवण वट	८७
२३-	श्रीअवध नगरका बाहरी परकोटा	८८

उत्तर भागः-

क्रमांक	विषय	पृष्टाङ्क
४१-	आर्जव	१३२
४२-	गुण उपसंहार	१३३
४३-	उपासना प्रसंग	१३४
४४-	भक्ति	१४०
४५-	श्रद्धादि लक्षण	१४२
४६-	विश्वास लक्षण, निष्ठा लक्षण	१४३
४७-	भाव भक्ति लक्षण	१४५
४८-	प्रेमादि लक्षण	१४७
४६-	स्नेहलक्षण	१४८
५०-	अनुराग लक्षण	१४६
५१-	प्रणयलक्षण	१५०
५२-	ऐश्वर्याशया माधुर्याशया उपासना	,,
५३-	साङ्ग भक्तिरस निरूपण	१५४
५४-	शान्तरसके अङ्ग	१६०
५५-	दास्यभावके रसाङ्ग	१६५
५६-	सख्यरतिके रसांग	१७१
५७-	वात्सल्यरसके अंग	१७७
५८-	शृङ्गाररस	१८०
५६-	रसवैरी मित्रता वर्णन	१८४
६०-	रसाभास विमर्श	१८५
६१-	सर्वरसाश्रय रघुनन्दन	१८७
६२-	फलश्रुति	१८६
६३-	पुष्पिका	१६०

❀ श्रीकनकभवन विहारिणौ विहारिणौ विजयेतेतराम् ❀

❀ श्री मन्मारुतनन्दनाय नमः ❀

श्री सिद्धान्त मुक्तावली

ग्रन्थ नामार्थः—सिद्धान्त कहते हैं भलीभाँति सोच-विचारकर स्थिर किये गये मत को। मुक्तावली कहिये मोतीमाला को। ग्रन्थोक्त सुहृद सम्मित सिद्धान्त को आचरण में उतारने के लिये जो अपने हृदय में धारण करेंगे, उनके हृदय शीतल सुशोभित होंगे तथा मूल्यवान् होने के कारण आगे मौके पर काम आयेंगे। अतः सिद्धान्त पर मुक्तावली का धर्म आरोपित किया जाना अत्यन्त युक्तियुक्त है।

मङ्गलाचरण, दोहा

निज गुरु पदरज वंदिपुनि, सुमिरि पवनसुत पाय।
करि सिद्धान्त मुक्तावली, गति अनन्यदरसाय ॥१॥

शब्दार्थ :—निजगुरु=अपने सद्गुरु भगवान् के। पदरज=चरणधूलि। पाय=चरणकमल। करि=(अवधीभाषा के व्याकरण से रचना) करता हूँ। गति=(साधन) मार्ग। दरसाय=दिखाने के लिए।

भावार्थ :—ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के निमित्त शिष्ट परम्परा के अनुरूप पूज्य ग्रन्थकर्त्ता भी ग्रन्थारंभ के एक ही दोहे में वन्दनात्मक, स्मरणात्मक तथा वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण करते हैं।

अपने सद्गुरु भगवान् के मंगलमय पद कमल पराग की वन्दना करता हूँ। "वन्दौं गुरुपद पदुम परागा।" 'गुरुपद धूरी तो सजीवन की मूरी है। गुरुपद रेनु तो हमारे कामधेनु हैं, आदि शीर्षक कई कवित्त श्रीसद्गुरु भावादर्श ग्रन्थ के इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य हैं।

तत्पश्चात् परमगुरु श्रीहनुमत्लालजी के चरणकमल का स्मरण करते हैं। "मंगल मूरति मारुत नन्दन। सकल अमंगल मूल निकंदन॥" श्री सिद्धान्त मुक्तावली नामक ग्रन्थ की रचना इस अभिप्राय से करते हैं कि इस ग्रन्थ के द्वारा अपने इष्ट में अनन्य निष्ठा रखने वाले साधकों के लिये सरल सुगम अचूक मार्ग भलीभाँति देखने में आ जाय।

साधक का प्रारम्भिक कर्तव्य

जगद दुखद जिय जानिकै, त्यागे जग व्यवहार।
राम मिलन हित खोजहीं, सो पुनि संत उदार॥२॥

शब्दार्थ:—जगद्=नाना योनियों में भ्रमण करनेके चक्कर में डाल देने वाला। दुखद=दुःख देने वाला। व्यवहार=लेने

देने का बरताव। संत = वीतराग महात्मा। उदार = दयालुता-पूर्वक परमार्थ बाँटने वाले।

भावार्थ:—संसार के सगे सम्बन्धी स्वार्थ के साथी कहे जाते हैं। इनका लौकिक हित आप कीजिये तो ये भी आपका लोककार्य कर दें। यह तो बनिये का सा व्यवहार है। परन्तु जगत सम्बन्ध के अनुरूप प्रभु प्रदत्त कर्तव्य भार को निस्स्वार्थ भाव से करना, अन्तःकरण संशोधक निष्काम कर्मयोग है। "यहि कर फल पुनि विषम विरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा॥" सो व्यवहार वाले लौकिक कार्य तो नाना योनियों में भ्रमाने वाले एवं परिणाम में दुःख देने वाले हैं। ऐसा मनमें जानकर उन्हें शीघ्र छोड़ ही देना उचित है। इस प्रकार जगत प्रपंच से छूट कर आनन्द सिन्धु सुखदायक रघुनाथ से मिलाने में माध्यम बनने वाले आचार्य कोटि मत मायायुक्त उदार संत को खोजना चाहिये।

सदगुरु अन्वेषण में संभाव्य भ्रम से बचिये।

कलि पाखंडी वेष बहु, लोभे नहिं तेहि देखि।
इनमें हरिजू ना मिलैं, वैष्णव में हरि लेखि॥३॥

शब्दार्थ:—पाखंडी = पा शब्द से कर्म, ज्ञान, उपासना-तीनों वैदिक धर्मों का पालन करना कहाता है। इनके खंडन करने वाले पाखंडी हुए।

"पालनाच्च त्रयीधर्मः 'प' शब्देन निगद्यते।
तं खण्डयन्ति ते यस्मात् पाखण्डास्तेन हेतुना॥"

चार्वक मतानुयायी नास्तिक, वाममार्गी, बौद्ध जैन तथा आधुनिक पंथाई वर्ग सभी पाखंडी हैं "श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ, संयुत बिरति विवेक। बे न चलहिं नर मोह बस, कल्पहिं पंथ अनेक॥"

भावार्थः—कलियुग वंचक है। इस समय बहुत से पैसे कमाने वाले भड़कीले आकर्षक साधुवेष धारण कर जहाँ तहाँ घूम रहे हैं। इनके सुवेष देखकर ललचाकर उनके पंजे में न पड़ना चाहिये। "तुलसी देखि सुवेष भूलहिं मूढ़ न चतुर नर। ज्यों जग केकी पेख, बचन सुधा सम असन अहि॥" इन पाखंडियों के मध्य में सर्व व्यापक निर्गुण ब्रह्म भले व्याप्त रहें, परन्तु हरि शब्द वाच्य सगुण साकार ब्रह्म तो वहाँ मिलेंगे नहीं। वे तो अपने वैष्णव भक्तों के साथ रहते हैं। मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।' "अहं भक्त पराधीनः"

वैष्णव तें सौगुन अधिक, रामभक्त जिय जानि।
जिनके सरनागति मिलैं, रामसिया दृढ़ मानि॥४॥

शब्दार्थः—भगवान् विट्ठलदास, श्री लक्ष्मीनारायण, श्री-नृसिंह भगवान् तथा भगवान् श्री राधारमण आदि सगुण ब्रह्म के सभी उपासक वैष्णव कहाते हैं। सभी वैष्णव अपनी अपनी जगह पर बहुत ही ठीक हैं। परन्तु श्री रामभक्त की तो बात ही और है:—"सबते सो दुरलभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया॥"

सभी वेद सगुण ब्रह्म के बहुत से अवतारों का भली-

भाँति वर्णन करते हैं। अपने अपने भक्तों के लिये इनके भूतल पर अवतार होते हैं। हजारों जन्मों तक कोई वैष्णव इन अवतारों की आराधना करे, तो अन्त में वह श्री जानकीकान्तजू का भक्त बनता है।

"सम्यग्वदन्ति निगमा बहुशोऽवतारान्
सद्ब्रह्मणो भुवितले निज भक्त हेतोः।
यस्तान्नमेदनुदिनं च सहस्र जन्म
रामस्य चैव हि तदा समुपासकस्सः॥

—श्री मन्महारामायण ४६। ५

इस प्रकार के विशुद्ध रामभक्त संत के शरणापन्न होने पर श्री दिव्य दंपति श्री सीतारामजी अवश्य मिलेंगे, ऐसा दृढ़ निश्चय मानें॥

श्री राम भक्त लक्षण

तिलक मधुर माला युगल, भुज अंकित धनु बान।
रामसिया युत नाम निज, रामभक्त तेहि जान॥५॥

शब्दार्थः—मधुर=पतली लकीर। मधुरमाला युगल= छोटी छोटी मणियों की दो लड़ वाली कंठी। अंकित=तप्त छाप युक्त।

भावार्थः—१ ललाट पर पतली लकीर वाले ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक हों। २-कंठ में सटी दो लड़ की तुलसी की मधुर

मनियों वाली माला हो। ३-भुजाओं पर श्री धनुषवाण की तप्त छाप हो। ४-श्री सियाजू, श्री राघवजू, या दोनों के संयुक्त नाम के साथ शरणान्त या दासान्त अपना नाम होते हों तथा उपलक्षण से पाँचवाँ संस्कार युगलमंत्र जापक हो, उन्हें श्री रामभक्त जानना चाहिये।

द्वाराचार्य जगद्गुरु श्री दुन्दुराचार्य ने षोडश श्लोकों में श्री रामभक्त के लक्षण निरूपित किया है। विस्तारभय से उनमे से केवल दो ही श्लोक यहाँ प्रसंग वश उद्धृत किये जाते हैं।

संस्कार पञ्चकापन्ना आकारत्रय शालिनः।
रहस्यत्रय वेत्तारः श्रेष्ठा भक्ताश्च ते मताः ॥१२॥
अर्थपञ्चक तत्वज्ञा रामकैङ्कर्यकारकाः।
सदाचारता ये च श्रेष्ठा भक्ताश्च ते मताः ॥१३॥

अर्थात् ऊपर कहे गये पाँचो संस्कार प्राप्त हों। मन्त्रार्थ सूचक अकारत्रय जो हैं। १-अनन्यार्हशेषत्व, २-अनन्यार्ह भोग्यत्व, ३-अनन्य उपायत्व। उन्हें अपनी रहनि में उतारे हों। मन्त्रार्थ के तीनों रहस्यों के जानने वाले हों, उन्हें श्रेष्ठ भक्त मानना चाहिये।

अर्थपंचक के ज्ञाता हों, अपने इष्टदेव श्री जानकी-वल्लभजू की सेवा में तत्पर रहने वाले हों, आचार विचार टकसार के अनुवर्ती हो, उन्हें श्रेष्ठ रामभक्त मानना चाहिये।

श्री रामभक्त के लक्षणों पर विशेष विचार इसलिये किया गया कि साधक को गुरु निर्वाचन में धोखा न हो जाय।

गुरुनिष्ठा

रामभक्त को गुरु करै, उर धरि सब तेहि रीति।
निकट रहै सेवै सदा, पद पंकज अति प्रीति ॥६॥

प्रारम्भि साधक को चाहिये श्री सर्वप्रथम गुरु वरण करे। "गुरु बिनु भवनिधि तरै न कोई। जौं,बिरंचि शंकर सम होई ॥" श्री सीतारामजी की नित्य सेवा प्राप्त करने वाले को चाहिये कि गुरु बनावें तो श्रीरामभक्त को ही। योगी हो, सन्यासी हो, अन्य अवतार के उपासक हो, उन्हें अपने मत-वाला मार्ग तो देखा गया है। श्री सीताराम प्राप्ति मार्ग को बेचारे क्या जानें! जो जिस मार्ग का पथिक होता है, वही अपने इष्ट मार्ग को जानता है। श्री रामभक्त से इतर संत से प्राप्त श्रीराम मंत्र ही क्यों न हो, आपको श्रीराम प्राप्ति न करा सकेंगे। क्योंकि उस श्री राममंत्र में उपयुक्त गुरुद्वारा प्राप्ति उपयोगी शक्ति पात नहीं संभव है।

कहावत है "गुरू करै जानकर, पानी पीवै छान कर।" जो साधक समझबूझकर योग्य गुरू नहीं चुनते, वह सुदुर्लभ रामतत्व नहीं प्राप्त कर सकेंगे।

"अपरीक्षको हि यः शिष्योनैति तत्वं सुदुर्लभम्।"

श्री विवेकसारचन्द्रिका के मतसे गुरु वही बने, जिसके प्रभाव से शिष्य सभी वेदवेद्य परात्पर ब्रह्म श्री जानकीवल्लभ लालजू के उपासनाविषयक परम ज्ञान समग्र रूप से जान ले।

"स वै गुरुर्यस्य गुरुप्रभावात्
प्रलेभिरे ज्ञानपरं हि शिष्याः।
उपासनं सर्व श्रुतिप्रणीतं
सीतापतेः सर्व परात्परस्य ॥"

"सतगुरु ऐसो चाहिये, जा घट अनुभव ज्ञान।
श्री निवास सो गुरु मिले, तौ रीझै भगवान ॥"

गुरु वरण करनेके पश्चात् शिष्य का कर्तव्य होता है कि उनकी भजनभावना रहनीकरणी सबोंके अनुकरण करने के लिये उन्हें हृदयमें धारण करे। यद्यपि श्री युगलकिशोर की प्राप्ति के अनेक साधन हैं, परन्तु शिष्यके लिये तो गुरुगृहीत मार्ग ही अधिक श्रेयस्कर है। तत्पश्चात शिष्यको चाहिये कि श्री सद्गुरु सानिध्य में रहे। नवजात शिशु को जैसे मातृगोद ही एकमात्र गति है, उसी भाँति नवीन शिष्यको श्री गुरु सामीप्य बास।

स्वरचित श्री गुरुमहिमा नामक ग्रन्थ में अनन्त श्रीस्वामी युगलानन्यशरणजी महाराज ने भी यही कहा है—
"सेवौ सदा समीप रहावो। श्रीसतगुरु आयसुहि गहावो ॥"
शिष्य के लिये यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है कि वह अति प्रीति पूर्वक श्रीसतगुरुपदपंकज की सेवा करे।

श्रीविवेकसारचन्द्रिका का कहना है कि श्रीरामचन्द्रमा-जी से अभेद मानकर जो श्री गुरुचरण की सेवा करता है, वह अन्यान्य साधन किये बिना ही एकमात्र गुरुसेवाप्रभाव से मरणोपरान्त दिव्य कनकमहल का वास पा लेगा।

मत्वात्वभेदं श्री रामाद्योहि सेवेद्गुरोः पदम्।
प्रस्थान सर्वमुल्लंघ्य स व्रजेत्कनकगृहम्।

कमसे कम साधन के प्रारम्भ में तो श्री गुरु सेवा अवश्य करले। तभी उसे श्रीजानकीकान्त में उत्तमा भक्ति प्राप्त हो सकेगी।

प्रथमं सेवयेच्छ्री मद् गुरोश्चरण पङ्कजम्।
ततः श्री मैथिली कान्ते जायते भक्तिरुत्तमा ॥
—श्रीविवेक सार चन्द्रिका ॥

गुरु प्रसाद भोजन करै, गुरु पादोदक पान।
गुरु आज्ञा नित अनुसरै, गुरु मूरति कर ध्यान ॥७॥

उपर्युक्त दोहे में चार साधन बताये गये।

१-पहला है सद्गुरु शीथ प्रसाद सेवन :—

श्री अमर रामायण की यह अमरवाणी सदा मान्य है कि जो गुरु शीथ भक्ति-भाव पूर्वक सेवन करते हैं, वह भीतर बाहर से पवित्र होकर जन्ममरण से रहित हो जाते हैं :—

"ये चाश्नन्ति गुरोच्छिष्टं भावेन भक्तितः सदा।
ते तु वाह्यन्तरं पूतास्तरन्ति भवसागरम् ॥

श्री गुरु महिमा की महावाणी पढ़िये :—

श्रीसतगुरु प्रसाद कन पावै । अमित महामख फल प्रगटावै ॥
श्रीसतगुरु जूठन हित तरसै । तेहि तन रोम रोम रस बरसै ॥

२-श्रीसदगुरु चरणामृत पान करना । श्रीगुरु गीता का आदेश है:—

गुरुपादोदकं सम्यक् संसारार्णव तारणम् ।
अज्ञानमूलहरणं जन्मकर्मनिवारकम् ॥

श्रीविवेक सार चन्द्रिकाकी महावाणी है कि मोह मल से मन को पवित्र बनाना चाहते हो तो श्रीगुरुचरण धोकर वह चरणोदक सदा पान करते रहो ।

यदीच्छसि मनः पूतं कर्त्तुं मोहमलीमसम् ।
प्रक्षाल्य गुरुपादाब्जं तज्जलं पिब सर्वदा ॥

३- श्री गुरु आदेश को शिरोधार्य पूर्वक पालन करे। श्रीगुरुगीता का आदेश है कि सद्गुरु उपासना करने वाले उन्हीं की आज्ञा की प्रतीक्षा में रहें । जिसने श्रीगुरु आज्ञा भंग कभी नहीं की, उसकी अवश्य मुक्ति होगी ।

"नित्य गुरुमुपासीत तस्यैवाज्ञा प्रतीक्षकः ।
आज्ञा भङ्गो न क्रियते तस्य मुक्ति र्न संशयः ॥"

श्रीगुरु मूरति कर ध्यान:—श्रीगुरुमहिमा की महावाणी है—

नकल असल हो जात है, श्री सतगुरु पद ध्याय ।
युगलानन्य शरन लखो, बहु थल विषम विहाय ॥

"ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः ।" जिसने श्री सद्गुरु मंगल विग्रह का ध्यान नहीं किया, उसके ध्यान पथ में श्री जानकीकान्तजू आने से रहे।

अर्पै निज सियराम को, तन मन धन गुरु हाथ।
गुरु आज्ञा नित अनुसरै, सेवा सिय रघुनाथ ॥८॥

अपने परमप्रियतम युगलकिशोर श्री मैथिलीरघुनन्दनजू को तन, मन, धन, सर्वस्व समर्पण करना है। कैसे करें? अजी, श्री गुरु हरि में अभेद नहीं जानते?

"हरेर्गुरोरैक्य रूपमिहलोके गुरुः स्वयम्।
नाराधयति तं मूढ़ः कथं स प्राप्नुयाद्धरिम् ॥"

श्री विवेक सार चन्द्रिका के मत से हरिगुरु में अभेद है। इस लोक में स्वयं हरि ही गुरु रूप धारण किये हुये हैं। इन प्रत्यक्ष गुरुरूप हरि की आराधना नहीं करते, तो परलोक में हरि को कैसे पावोगे ? समझ में आई बात ? श्रीगुरुजी को सर्वस्व समर्पण करो, सर्वस्व ! जान लेना उन्हीं युगल लाल को समर्पित हो चुका।

नवेली मैथिलीजू तथा नवेले अलबेले रघुलालजू को सेवाअर्चाविग्रह में राजसी ढंग से करनी चाहिये, भावना में मानसिक सेवा चलेगी। दोनों ही प्रकार की सेवा श्रीगुरु आज्ञा के अनुसार करनी चाहिये। "गुरु श्रुति संमत धर्म फल, पाइये विनहि कलेश।" श्रीकृपानिवास स्वामी की महावाणीः—
"सतगुरु चातुर होय प्रवीना। अनुभववादी नित्य नवीना ॥"

सेवा की रुचि जानकर, उनकी रुचि अनुकूल सेवा करना श्रीसदगुरु ही सिखावेंगे ।

पंचसंस्कार का नित्य सम्हार

धारै निज गुरु हाथ करि धनुपादिक सब चिन्ह।
भरे अमित आनन्द उर पाइ निधी जिमि खिन्ह ।।६।।

पंच संस्कार प्राप्त करते समय अपने सद्गुरु भगवान के कर कंज से जिस प्रकार पाँचो मुद्राओं की शीतल छाप प्राप्त हुई थी, उस प्रकार मुद्राओं ('सब चिन्ह' को नित्य धारण करना चाहिये । ये सभी मुद्राएँ युगल लाल के निकटवर्ती परिकर ही धारण करते हैं । विचारना चाहिये कि इनके धारण से मैं भी समीपी परिकर बन गया । ऐसा समझ-कर हृदय में इतने अधिक आनन्द का अनुभव होना चाहिए जैसे "जनम रंक जनु पारस पावा ।"

"कंठ में मधुर मनमाहिनी सुमाल जुग
जगमग जोत धनुबान बाँहुमूल लस ।
भाल छबिजाल तर तिलक झलक बिंदु
चन्द्रिका समेत श्री अजब परिपूर रस ।।
सीताराम नाम अंक मंडित समूह बपु
रामरज सहित प्रकास स्वच्छ भान सस ।
(अ) युगल अनन्य कोटि कोटि खंड युत अंड
करन समर्थ पावनेस सुभ संत अस ।।"

अर्ध इन्दु श्रीविन्दु युत, करै जो तिलक सुलेख ।
भौं तैं केस प्रयंत अति, ललित लिखै जुग रेख ॥१०॥

ऊपर पंच मुद्रा धारण करने की विधि बताई। इससे पहले ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक करना चाहिये। नासिका मूल के ऊपर ललाट तल में सर्वप्रथम रोली का अर्ध चन्द्र लिखे। अर्थ चन्द्र के ऊपर रोली की ही विन्दु अंकित करे। उससे ऊपर श्री-रेखा नीचे मोटी ऊपर पतली नोकदार चित्रित करे। श्री के दोनों ओर युगल रेखा वाले तिलक की रचना करे। यह युगल रेखा भौंह से ललाटोपरि केश तक लम्बी होनी चाहिये।

"भ्रुवोन्तादपि चारम्य ललाटान्ते च धारयेत्।"

तिलक रामरज का कि मलकोटा? तिलक मूल में सिंहासन लिखे कि वडगल? पूज्य ग्रन्थ कर्त्ता मौन हैं। जिस साधक को अपने सद्गुरु द्वारा जैसा प्राप्त हुआ हो, वैसा ही करे। (अर्धचन्द्रविन्दु भी श्री ग्रन्थकर्त्ता का अपना तिलक है। अन्य साधक को श्रीगुरु द्वारा जैसा मिला हो वैसा ही करे। (टीकाकार)

वायें कर पुनि धनु लिखै, दहिने कर जुग वान ।
नाम मुद्रिका हृदय लिखि, भाल चन्द्रिका जान ॥११॥

बाईं भुजापर श्रीधनुषजी का चित्र रामरज से लिखे। लिखने शब्द से जान पड़ता है कि श्रीकवि के जीवनकाल में श्रीधनुषादिक का लिखित चित्र ही अंकित करने की प्रथा रही

होगो । अब तो सभी मुद्रायें धातु की बनी प्रचलन में है। साधक छापकर अंकित करते हैं। खाशकर तप्त छाप तो धातु मुद्राओं के द्वारा ही सम्भव है। दाईं भुजा पर श्रीयुगलबाण अंकित करना चाहिए।

वामे करे धनुः कुर्य्याद्दक्षिणे वाणमेव च।
सबिन्दु तिलकं कुर्य्यान्मुक्ति भागी भवेन्नरः॥
वाहुमूले धनुर्वाणेनाङ्कितो रामकिंकरः।
शीतलेनाथ तप्तेन तस्य मुक्ति र्न संशयः॥
— श्रीअगस्त्य संहिता।

श्रीनाम मुद्रा की छाप दोनों वक्षकपाट पर तथा उनके मध्य हृदय पर श्रीमुद्रिका की छाप अंकित करनी चाहिये। परन्तु आजतक श्रीनाम मुद्रा ललाट पर तिलक रेख के बगल में अंकित की जाती है। श्रीमुद्रिका की छाप दोनों कनपट्टीपर अंकित करने की रीति है। क्या हर्ज है यदि ललाट पर तथा हृदय पर भी अंकन हो? श्रीचन्द्रिकाजी की छाप तो ललाट में श्री रेखा के ऊपर धारण करनी चाहिये।

श्रीतुलसी माला की महिमा पुराणों में तथा ऊर्ध्वपुण्ड्र पंच मुद्रा की महिमा श्रीनारद पाँचरात्र संहिताओं में विशेष रूप से वर्णित है। यहाँ स्थानाभावसे वे उद्धरण नहीं दिये जा सकते।

कंठलग्न धारै जुगल मधुर तुलसिका दाम।
रामसिया युत शरन पद, राखै अपनो नाम॥१२॥

शब्दार्थ—कंठलग्न=कंठ से सटी हुई। मधुर=छोटे दानो (मनियों) के बने। दाम=माला, यहाँ कण्ठी से तात्पर्य है।

भावार्थ :—साधक को चाहिये कि श्रीसद्गुरु भगवान् से प्राप्त कण्ठी को कभी न त्यागे। कण्ट से सटी हुई, मधुर मधुर मनियाँ वाली, दो लर वाली, शुद्ध तुलसी की बनी कंठी गले में धारण किये रहे। सद्गुरु भगवान का दिया हुआ अपने इष्ट श्रीसीताराम जू के दोनों या कोई एक नाम के साथ शरणान्त नाम अपना लोगों से कहवावें। जन्म नाम से पुकारने पर न बोले। कहे मेरा नाम तो श्रीसियाशरण या राघव शरण (ऐसे कुछ) हैं।

पूज्य ग्रन्थकर्त्ता का यह आदेश उपासना शास्त्र सम्मत है। देखिये श्रीसनत्कुमार संहिता भी यही कहती है :—

तुलसी मालिका सूक्ष्मा कंठलग्ना द्विधाकृति।
दद्यात्तां क्षणमात्रोऽपि शिष्योनैव त्यजेत्पुनः॥

अर्थात् तुलसी की बारीक दो लर वाली माला कण्ठ में सटी हुई गुरुदेव देवें। उसे शिष्य क्षण भर पुनः नहीं त्यागें। पराशर स्मृति का आदेश है :—भगवान् के नाम के अन्त में शरण शब्द जोड़कर साधक का दीक्षोपरान्त नवीन नामकरण होना चाहिये। ऐसे नाम धराने से साधक के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और वह पुण्यभागी बन जाता है।

योजयन्नाम शरणान्तं भगवन्नाम पूर्वकम् ।
तस्मात्पापानि नश्यन्ति पुण्यभागी भवेन्नरः ॥

जपै नित्य सियराम के, युगल षडक्षर मन्त्र ।
अंगन्यास ध्यानादि सब करै यथाविधि तन्त्र ॥१३॥

श्रीसीतारामजी के युगलषड्क्षर अर्थात् दोनों मिलाकर द्वादशाक्षर मन्त्र का नित्य जप करे। जप के पूर्व अंगन्यासादि विनियोग तथा इष्ट ध्यान मन्त्रशास्त्र के आदेशानुसार करे।

श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के बहुत से स्थानों में केवल श्रीराम षड्क्षर मन्त्रराज शिष्यों को देने की प्रथा है। इस वर्ग के लोग श्रीयुगल मन्त्रराज जप को आधुनिक रसिक भक्त कल्पित अतः अप्रामाणिक मानते हैं। अतः श्रीयुगलमन्त्र जप का आर्ष प्रमाण देना यहाँ आवश्यक है।

मन्त्ररहस्य के मर्मज्ञ ब्रह्मर्षि सत्तम श्रीअगस्त्यजी अपनी अगस्त्य संहिता में कहते हैं कि श्रीसीतामन्त्र के साथ श्रीराम मूल मन्त्रराज का जप करना चाहिये। न्यासादि भी निष्पाप साधकों को वहीं करना चाहिये।

सीता मन्त्रेण कूर्वीत मूलमन्त्र जपंस्तथा ।
उपस्थानादिकाः कार्यास्तत्रैवगतकल्मषैः ॥

—— श्रीअगस्त्य संहिता अ० २५।१६

श्री अभियुक्त सारावलि में भी कहा है :—

सीतामन्त्रं जपेन्नित्यं राममन्त्रानुयोगतः।
नित्य सम्बन्ध भावेन पारम्पर्य क्रमेण च॥
श्रीमन्त्रपूर्वमुचार्य्य पश्चान्मूलं समुच्चरेत्।
मुनीनामार्ष सिद्धान्त जपात्सिद्धिरनुत्तमा॥

अर्थात् श्रीराम मन्त्र के साथ श्रीसीता मन्त्र का जप करे। नित्य सम्बन्ध भाव एवं परम्परा क्रम से जपे।

श्रीसीता मन्त्र प्रथम, श्रीराम मन्त्र पीछे दोनों को साथ साथ उच्चारण करे। यह उपासक मुनियों का प्राचीन आर्ष सिद्धान्त है। इस जप से सर्वोत्तम सिद्धि प्राप्त होती है।

नित्य कितनी संख्या में युगल मन्त्रराज जपे ? श्री-अगस्त्य संहिता का आदेश है कि छः हजार नित्य जपना चाहिए। उतना न हो तो एक ही हजार सही। कम से कम तीन सौ, नितान्त एक सौ से कम नहीं, यत्नपूर्वक जप अवश्य करे। मन्त्र प्राप्त करके जपे नहीं तो अधोगति होगी।

षटसहस्त्रं सहस्त्रं च त्रिशतं शतमेव च।
जपं कुर्यात्प्रयत्नेन नोचेत्प्राप्नोत्यधोगतिम्॥२५।२४॥

चाहे जितने दिनों में पूरा हो जितने अक्षर के मन्त्र हैं, उतने लाख जपसंख्या पूरी करने पर अभीष्ट सिद्ध होता है।

वर्णालक्षं जपेन्मन्त्रमिष्टार्थान् साधयेत्ततः।

— श्रीरामार्चन चन्द्रिका

श्रीअगस्त्य संहिता तथा अन्य उपासना ग्रन्थ के अनुसार मुक्ति प्रदायक श्रीराम मन्त्र जप के लिये न तो विनियोग (दीक्षा) न पुरश्चरण, न न्यास विधि की ही आवश्यकता है। यह तो केवल जप मात्र से सिद्धि प्रदान करते हैं :—

रामरामन्त्रास्तु विप्रेन्द्र शीघ्रं मुक्तिप्रदा शृणु।
विनैव दीक्षां विप्रेन्द्र पुरश्चर्यां विनैव हि,
विनैव न्यास विधिना जपमात्रेण सिद्धिदाः ॥२५।६,१०॥

किन्तु मन्त्र-शास्त्र की मर्यादा रक्षार्थ पूज्य ग्रन्थकर्त्ता आदेश करतेहैं कि 'अंगन्यास ध्यानादि सब करै यथाविधि तन्त्र।' अत: यहाँ श्रीअवध के मन्त्रजापक समाज में प्रचलित परंपरानुगत न्यास विधि लिखी जाती है।

❀ अथ विनियोगः ❀

ॐ अनयोः, श्रीसीतारामयोः, श्रीयुगल षडक्षर मन्त्रराजयोः, श्रीशेष ब्रह्माणौ ऋषी, गायत्री छन्दसी, श्रीसीतारामौ परमात्मानौ देवते, श्रीं रां बीजे, नमोनमः शक्ती, सीतायै रामाय कीलके, श्रीसीताराम प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः। इति संकल्पः।

अब आचमन करके प्राणायाम करना चाहिये। रां पूरकं १६ बार। श्रीं कुम्भकं ६४ बार। रां रेचकं ३२ बार।

❀ अथ ऋष्यादि न्यासः ❀

ॐ श्री शेष ब्रह्मणौ ऋषीभ्यां नमः मूर्द्धिन।
ॐ गायत्री छन्दसीभ्यां नमः मुखे।

ॐ श्रीसीताराम परमात्मा देवताभ्यां नमः हृदि ।

ॐ श्रीं रां बीजाभ्यां नमः गुह्ये ।

ॐ नमोनमः शक्तीभ्यां नमः पादयोः ।

ॐ सीतायै रामाय कीलकाभ्यां नमः सर्वाङ्गे ।

❁ अथ करन्यासः ❁

श्रां रां, श्रीं रीं, श्रूं रूं, श्रैं रैं, श्रौं रौं, श्रः रः ।

ॐ श्रां रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।

ॐ श्रीं रीं तर्जनीभ्यां नमः ।

ॐ श्रूं रूं मध्यमाभ्यां नमः ।

ॐ श्रैं रैं अनामिकाभ्यां नमः ।

ॐ श्रौं रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।

ॐ श्रः रः करतल करपृष्टाभ्यां नमः ।

❁ अथ हृदयादि न्यासः ❁

ॐ श्रां रां हृदयाय नमः ।

ॐ श्रीं रीं शिरसे स्वाहा ।

ॐ श्रूं रूं शिखायै वषट् ।

ॐ श्रैं रैं कवचाय हुम् ।

ॐ श्रौं रौं नेत्राभ्यां वौषट् ।

ॐ श्रः रः अस्त्राय फट् ।

❀ अथ दिग्बन्धनम् ❀

ॐ श्रीं रां रक्षतु प्राच्याम् । (पूर्व से)

ॐ श्रीं रां रक्षतु याम्याम् । (दक्षिण से)

ॐ श्रीं रां रक्षतु प्रतीच्याम् । (पश्चिम से)

ॐ श्रीं रां रक्षतु उदीच्याम् । (उत्तर से)

ॐ श्रीं रां रक्षतु आग्नेयाम् । (अग्नि कोन)

ॐ श्रीं रां रक्षतु नैऋत्याम् । (दक्षिण पश्चिम कोन)

ॐ श्रीं रां रक्षतु वायव्याम् (पश्चिमोत्तर कोन)

ॐ श्रीं रां रक्षतु ऐशान्याम् । (पूर्वोत्तर कोन)

ॐ श्रीं रां रक्षतु ऊर्ध्वम् । (ऊपर की ओर से)

ॐ श्रीं रां रक्षतु अधोमाम् । (मेरे नीचे से)

❀ अथ वर्ण न्यासः ❀

ॐ श्रीं रां मूर्द्धिन । + ॐ सीं रां भ्रुवोर्मध्ये ।

ॐ तां मां मुखे । + ॐ यैं यं नाभौ ।

ॐ नं नं गुह्ये । + ॐ मं मं पादयोः ।

❀ अथ पदन्यासः ❀

ॐ श्रीं रां मूर्द्धिन । ॐ सीतायै रामाय नाभौ ।

ॐ नमोनमः पादयोः ।

❀ अथ मन्त्र न्यासः ❀

ॐ युगल मन्त्रराजाय नमः मूर्द्धिन् ।

ॐ युगल मन्त्रराजाय नमः भ्रुवोर्मध्ये ।

ॐ युगल मन्त्रराजाय नमः मुखे ।

ॐ युगल मन्त्रराजाय नमः हृदि ।

ॐ युगल मन्त्रराजाय नमः नाभौ ।

ॐ युगल मन्त्रराजाय नमः गुह्ये ।

ॐ युगल मन्त्रराजाय नमः पादयोः ।

आचमन करके, ध्यान करे ।

ध्यायेच्चम्पक तद्वर्णां हेमाङ्गीं नीलवस्त्रकाम् ।

सर्वालङ्कार संयुक्ता रामवामे सदास्थिताम् ॥

❀ जपान्त में समर्पण ❀

श्रीसीताराम युगल षडक्षर मन्त्रराजं साङ्गोपाङ्गं यत् जपं कृतवान् तत्सर्वं श्रीसीतारामचन्द्रौ दक्षिणे करकञ्जौ समर्पणमस्तु ।

इन्दु बिंदु श्रीरूप सिय, तिलक सियावर रूप ।

युगल तिलक यहि जानिये, सब तिलकन में भूप ॥१४॥

बिन्दु सहित अर्द्धचन्द्र तथा श्रीरेखा तीनों श्रीसीता-स्वरूप हैं । श्रीके आजू-बाजू वाली दोनों तिलक रेखाएँ (अनु-कूल तथा दक्षिण उभय प्रकार के नायक रूप) श्रीरघुनायक-

स्वरूप हैं। यह युगल तिलक हुआ, सभी प्रकार के वैष्णव-समाज में प्रचलित तिलकों में नरपति।

सीता स्वरूपं श्रीचिह्नामर्द्ध चन्द्रेण विन्दुना।
रेखाकारेण रामस्य तेन वै युगलाख्यकम्॥

— श्रीविवेकसार चन्द्रिकायाम्।

युगल तुलसिका माल गल, युगल तिलक जेहि भाल।
धनुष वान अंकित भुजा, सो अति प्रिय सिय लाल॥१५॥

जिस सौभाग्यशाली भक्त के गले में युगल लड़ वाली तुलसी-कण्टी बँधी है, ललाटमें युगल तिलक अंकित है तथा दोनों भुजाओं पर श्रीधनुषबाण के चिह्न अंकित हैं, वह भक्त श्रीयुगल लाल का दुलारा हैं। श्रीप्रियतम सम्बन्धी चिह्न देख श्रीप्रियाजू दुलार करती हैं, श्रीप्रिया चिह्न देख प्रियतम दुलार करते हैं। यहाँ युगल कण्ठी और युगल तिलक कहकर, उपलक्षण से सभी प्रकार की युगल उपासना करने का आदेश दे रहे हैं। श्रीयुगल-भावना की रीति श्रीरसिक-प्रकाश भक्त-माल की कवित्त सं० २७५ से सीखिये। वह इसप्रकार पठित है:-

नाम जपै युगुल युगुलरूप हिय ध्यावै,
युगुल चरित्र रसिकन मध्य गावहीं।
मिथिला अवध धाम युगुल की टेक राखै,
युगुल प्रदक्षिना महलकी लगावहीं॥

युगुल प्रसाद चरणामृत युगुल नेम,

जैति भनि युगुल अनन्द उपजावहीं।

युगुल सुकंठ कंठो आयुध युगुल छाप।

युगल तिलक आदि मन अति भावहीं ॥

सियाकी मुद्रा चंद्रिका, रघुवर के धनुवान।

जो धारै निज अंग में, सोइ सकल गुन खान ॥१६॥

बिनु आचार्य संस्कार बिनु, मिलै न सिय रघुलाल।

बिना वसीले प्राप्त नहिं, प्राकृत हू भूपाल ॥१७॥

शब्दार्थ—संस्कार=पाँचो संस्कार। बसीले (बसील: अ० पु०)=माध्यम, बिचौलिया। प्राकृत=इस मर्त्यलोक वाले। भूपाल=राजा।

जब कोई वीतराग सन्त गुरु बनकर आपको अपना लें तो आप निश्चय जानें कि प्रियतम श्रीजानकीकांत जू ने अपनी कृपा ही को दूती बनाकर, आपको अपने पास लिवा लाने को भेजा है। रसिको के घरमें श्रीरसिकगुरु को श्रीकृपावती नामक दिव्य मैथिली सखी माना जाता है।

जौं रघुवीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम मोहि दरस हठि दीन्हा ॥

जब सद्गुरु दीनदयालु आपको पाँचो संस्कार से संस्कृत कर देवें, तब आप जानिये कि श्रीजानकीवल्लभलाल जू के दिव्य दरबार में जिस वेषभूषा को धारणकर उपस्थित हुआ जाता है, वही आपको मिल गया। तब मिलन में क्या सन्देह

रहा ? अब भजन-भावना के चरणों से चल चलिये दरबार में। इस लोक का ही दृष्टान्त लीजिये। किसी राजा से आप को मिलना है, वहाँ के किसी राजकर्मचारी को माध्यम बनाइये। उस दरबार के शिष्टाचार सिखा कर, वहाँ के बाना धारण करा आपको राजा के पास ले जायेंगे। बेखटके मिलिये अब राजा से। दुष्कर कार्य माध्यमके द्वारा सुकर हो जाता है।

मुहर छाप निज नामकी, लिखि दिवान के हाथ।
ताहि देखिकै सहि करत, रीति यही महिनाथ ॥१८॥

राजा अपने द्वारा नियुक्त (दीवान) कर्मचारी का हस्ताक्षर पहचानता है और उस अधिकृत कर्मचारी द्वारा दी हुई किसी कागज पर या वस्तु पर अपने नाम की मुहर छाप देख कर जान लेता है कि यह मेरे निमित्त कर्मचारी ने मेरी मुहर छाप देकर भेजा है। राजा उसे सही अर्थात् स्वीकार कर लेता है। यही राजनीति मर्यादा पालक श्रीअवधेश जू के दरबार में भी बरती जाती है। अपने दीवान (अधिकृत गुरु) द्वारा तिलक छाप के मोहर देखकर उस जन को अंगीकार कर लेते हैं।

यातै रामानन्य जे रसिक ताहि गुरु धार।
धारै सब संस्कार अंग, तब सहि कर सरकार ॥१९॥

अतएव श्रीजानकी वल्लभलाल जू के जो कट्टर रसिकानन्य उपासक है, उन्हीं को गुरु निर्धारित करना चाहिवे। वह सद्गुरु अपने करकंज से पाँचो संस्काररूपी मुहर छाप अंग में

अंकित कर देवें, तब निश्चय जाने कि श्रीयुगल सरकार ने मुझे सही सही स्वीकार कर लिया ।

श्रीसीतारामीय रसिकानन्य भक्तों से सम्बन्ध, उन्हीं का सेवन, उन्हीं से स्नेहवर्द्धन, सत्संग करने का अगले दोहों में आदेश देंगे । अतः रसिक भक्तोंके लक्षण तथा उनको पहचानने की रीति जानना आवश्यक हो गया । यहाँ प्रसंग वश वह लिखा जाता है ।

धाम रसिक लीला रसिक, नाम रसिक अरु रूप ।
युगल कंठ कंठी लसत, शोभा होत अनूप ।।
युगल धाम मिथिला अवध, युगल नाम सियराम ।
पियप्यारी गुनरूप में, पगे रहत सब याम ।।
युग लीला गावहिं सुनहिं, युगल ध्यान उर माहि ।
जोड़ी युगल किशोर की, निरखि रहत सुधि नाहि ।।
धनुरबान अंकित रहै, चहै न जगके भोग ।
तृन सम सुख संसार के, विषय लखै जिमि रोग ।।

— श्रीरसिक वस्तु प्रकाश ।

तेई रसिक नरेश सुठि, शानदार सिरताज ।
जाके प्रीतम गुन विना, कढ़त न अपर अवाज ।।

— श्री प्रेमचन्द्रिका ।

फिरै उन्मत्त जग विषय विरक्त
लोकलाज कुल कानि जिन पीठ पाछे मेली है ।

बोलनि हँसनि प्रेम प्रीति रसिकन सँग

और रीति जिन्हैं सब लागत गवेली है ॥

अग्रस्वामी आदि रस ग्रन्थनके पाठ करैं

और श्रुति पाठहू लों लागत कठेली है ।

बैठत उठत परा प्रेमा रति छाके रहैं

भाविक रंगीलन को चाल अलबेली है ॥

— श्रीरसिकप्रकाश भक्तमाल क० २३८ ।

जे अनन्य सियराम के, रसिक भक्त गुनखानि ।

पूजै तिनको सकलविधि, निज कुटुम्ब जिय जानि ॥ २० ॥

श्रीसीताराम के जो अनन्य रसिक भक्त हैं, वह सभी सद्‌गुणों को खान हो जाते हैं । उन्ही को अपना सच्चा सम्बन्धी अपने मन से निश्चय रूप से जाने । उनकी मन, वचन, कर्म से पूजा, सेवा सत्कार करे ।

रसिकाचार्य श्रीमत्कृपानिवास स्वामी अपने अनन्य चिन्तामणि नामक ग्रन्थ में लिखते हैं :—

प्रथम संग रसिकन को कीजै ।

जिन करि संग क्रम भ्रम दुख छीजै ॥

अंतर खोलि मिलै चित हित सों ।

सेवै तनकरि मनकरि चितसों ॥

जग नाते हाते करि डारै ।

रसिकन सों नातो प्रतिपारै ॥

स्वर्ग मुक्ति जग राज बड़ाई ।

तृन लों तोरि करै सिवकाई ॥

"युगल प्रेम रस मगन जे, तेई अपने जानि ।

सब बिधि अंतर खोलिकै, तिनहीं सो रति मानि ॥"

— श्रीप्रेमचन्द्रिका ।

असनादिक व्यवहार सब, राखै रसिकन संग ।

रसिकन को बानो धरै, सदा आपने अंग ॥२१॥

शब्दार्थ :—असन=भोजन । बानो=वेषभूषा ।

भावार्थ :—भोजनादि सभी व्यवहार, एकमात्र रसिक भक्तों के साथ करे। अपने कण्ठ में श्रीयुगल तुलसी की महीन माला, माथे पर युगल तिलक, भुजाओं तथा हृदय पर धनुष-बाणादिक छाप, श्रीसियास्वामिनी जू के श्रीअंग वर्ण सम पीत वस्त्र आदि रसिकोचित वेषभूषा धारण करे ॥

खानपान तो कीजिये रसिक मंडली माहि ।

जिनके और उपासना, तहाँ उचित 'ध्रुव' नाहि ॥

हास बिनोद रंग व्यवहारा ।

परमारथ स्वारथ परिवारा ॥

रसिकन संग सदा सत्र करिये।

लाज जाति कुल धर्म न डरिये॥

— श्रीअनन्य चिन्तामणि।

रसिकन संग मिलि महल में जाय

पद गावैं रसभरे स्वर ताल को मिलाय कै।

रसिकन संग मे प्रसाद स्वाद लहै

काहूसों न कछु चहै रूप संपतिको पाय कै॥

रसिकन संग औध बीथिन में डोलैं

बात हियकी न खोलैं और वस्तुमें लुभाय कै।

रसिकन संग बिनु और न सुहाय

ज्ञानी योगी समुदाय लागे नीरस बनाय कै॥

— श्रीरसिकप्रकाश भक्तमाल क० २३६।

मन वच क्रम करि राखिये, राम–रसिक पद प्रीति।

तवैं द्रवैं सियराम दोउ, कीरति जासु पुनीति॥२२॥

शब्दार्थः—क्रम=कर्म। द्रवै=रीझेंगे। कीरति (कीर्ति) =सुयश। पुनीति=पावन।

श्रीजानकीरमण जू के रसिकानन्य भक्तों के पादारविन्द में मनसे, वचनसे, क्रिया द्वारा भी प्रीति का निर्वाह करना चाहिये। पावन सुयश वाले श्रीयुगलकिशोर जू अपने दासानुदास पर विशेष रूप से रीझते हैं।

रसिकन की संगति करै, सुनै वचन सब काल ।
रसिकाई तबही मिलै, कृपा करहि सिय लाल ॥

— श्रीरसिक वस्तु प्रकाश ।

मंडलेश महिनाथ सम, विष्णु भक्त जिय जानु ।
सार्वभौम नृप कोटि सम, राम-भक्त अनुमानु ॥२३॥

शब्दार्थ :—विष्णु भक्त=वैष्णव । मंडलेश महिनाथ= बड़े राज्य के परतन्त्र छोटे राजा । सार्वभौम नृप=चक्रवर्ती सम्राट् ।

भावार्थ:—कर्मकांडी, योगी, ज्ञानी आदि सामान्य प्रजा हैं । उनमें सगुण ब्रह्म उपासक वैष्णव मंडलेश्वर राजा हैं, तो श्रीसीतारामीय रसिकानन्य सन्त चक्रवर्ती सम्राट् तुल्य मान्य हैं ।

निज निज ठौर सब राजत हैं भूपति से
इन्द्र आदि समता न पावत गुमान को ।
रैन दिन श्याम गौर रूप हिय माँहि धरे
रूखे जनहूं को करे रसिक समान को ॥
घोर भव त्रास सब देत है मिटाय
सुखदाई सियराम के सुनाइ गुनग्राम को ।
और सुख सकल वैकुण्ठ हूलौं त्याग करै
अवध के वासी सम जगत में आन को ?॥

— श्रीरसिक प्र० भक्तमाल क० २४० ।

राम भक्तके दरस तैं, होत सकल अघ नास।
सतसंगति तैं पाइये, सियवर महल निवास ।।२४।।

भावार्थ :—श्रीजानकीवल्लभ जू के भक्तों के दर्शन से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। "सन्त दरस जिमि पावक टरई।"

रसिक भक्त के सत्संगसे श्रीजानकीरमणजू के कनक-महल का सशरीर मानसिक निवास तथा स्थूल शरीर त्यागने पर, अपने सखी स्वरूप से श्रीकनकमहल की नित्य टहल प्राप्त होती है। अत:—

महल माधुरी जो चहै, तो करु इनसे मेल।
अपर संग परसे नही, जैसे जलमें तेल ।।

— श्रीरसिक वस्तु प्रकाश।

योगी जपि तपि संग तजि, करिये रसिकन संग।
रसिक संग करि होत जिय, सियपिय मिलन सुढंग ।।२५।।

कामना पूरक देवताओं के मन्त्र जापक, तपस्वी—ये सब कर्मकांडी हैं, इनके संग से तथा इनकी रीति अपनाने से पुण्य लोकों की प्राप्ति होगी। पुण्य क्षीण होने से पुनः जन्म-मरण के चक्कर में पड़ो। योगी के संग से योग सीखोगे। यदि निर्वीज समाधि सिद्ध हुई तो कैवल्य मोक्ष मिलेगा। अपनी सत्ता मिटाकर नीरस ब्रह्मतेज मिलना। राम ! राम !! हम तो सेतमेत में मिलने पर भी ऐसी मुक्ति न लेंगे।

"अस विचारि हरि भगत सयाने।
मुक्ति निरादरि भक्ति लुभाने ।।"

हाँ, श्रीसीतारामीय रसिकानन्य भक्तों का सत्संग अलबत्त ! महान् लाभकारी है । श्रीजानकीरमण जू के महल वास प्राप्त करने की रीति इन्हीं के सत्संग में जानने को मिलेगी। जरा उस रीति को जान भी तो लीजिये ।

प्रथम षडक्षर युगुल मन्त्र लेइ पुनि
मिथिला अवध जन्म नातो मन भावई ।
ऊर्ध्वपुण्ड्र धनुबान तप्त भुज अंसन पै
कंठमें युगुल कंठी शोभा सुख छावई ॥
अग्रस्वामी भनित प्रबन्ध मिलि अष्टयाम
सेवा औ सिंगार बीज अंकुर बढ़ावई ।
इष्ट को परत्व महामाधुर्य स्वरूप जानै
दम्पति उपासना की रीति तब पावई ॥

❀ निर्गुण मतवादों का संग त्याज्य है ❀

ज्ञानिन योगिन करत सँग, जे तजि रसिकन संग ।
सूख गर्त सेवन करत, सठ तजि पावन गंग ॥ २६ ॥

भावार्थ :—श्रीसीतारामीय रसिक भक्तों का संग छोड़कर, यदि कोई किसी चमत्कार प्रदर्शनसे आकृष्ट होकर, वेदान्त विद्वान् अद्वैतवादी का, अष्टांग हठयोग साधक योगी का संग करता है, तो वह शठ है। शठ कहते हैं मूढ़ को, जड़ को ।

क्योंकि वह इतना भी नहीं जानता कि जल का परम पावन रूप तो श्रीगंगा में मिलेगा, सूखे गड्ढे में जल कहाँ ?

रसिक साधक तो सगुणब्रह्म में प्राप्य वह रस खोजने चला है जिसको तैतिरीय २।७ "रसो वै सः।" छान्दोग्य ३।१४।२ "सर्वरसः" कहती है। छान्दोग्य १।१।३ का तो कहना है कि सभी उपलब्ध रसों से अनन्त गुणा अधिक स्वाद सगुण ब्रह्म श्रीरघुलालजू में है। "स एव रसानां रसतमः परमः परार्द्धं ।" इस रस को तो रससिद्ध, रसानुभव सम्पन्न रसिक गुरु ही प्राप्त करा सकते हैं। उनकी संगति नहीं करते और चले हैं, रस खोजने योगी ज्ञानी के द्वार पर।

इनके निर्गुण ब्रह्म के पास रसवान् होने का गुण कहाँ पाइये ?

एक बात और ऐसे तो जीवमात्र में सहज स्त्रीत्व है, क्योंकि यह सगुण ब्रह्म की पराप्रकृति है—श्रीगीता ७।५ चिद्-शक्ति है - योगसूत्र ४।३४। अतः श्रीसनत्कुमार तन्त्र में जीव को आत्मस्वरूप चिन्तन के सम्बन्ध में कहा गया है।

आत्मानां चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोरमाम्।
रूपयौवन सम्पन्नां किशोरी प्रमदा कृतिम् ॥

अपनी इस स्त्रीरूपी जीवशक्ति को रस सुख प्रदायक तो वही सगुणब्रह्म हैं जिसका नाम ही है रमणशील, रमणीय रूपार्णव श्रीराम। क्योंकि पुरुषोचित गुण भी तो उन्ही में है। "लोके विख्यात पौरुषम्" श्रीवाल्मीकीय रामायण १।२५।१

"प्रमदा मनोहर गुणग्रामाय रामात्मने ।" श्रीसनत्कुमार संहिता में श्लोक ५४ । ऐसे गुणगणों का रसन तो उन्हीं में सम्भव है । अच्छा योगीजी, ज्ञानीजी—ठीक ठीक बताइये ? आपके ब्रह्म किस लिंग के हैं ? नपुंसक (संस्कृत व्याकरण, लिंगानुशासन देखिये) स्त्री रूपा जीवशक्ति नपुंसक में रस खोजती है ! इसी से तो ज्ञानी योगी को सूखा गड्ढा कहा गया है ।

ज्ञान योग आश्रय करत, तजिकै भक्ति उदार ।

वालिस छाँह बबूर की, बैठत तजि सहकार ।।२७।।

शब्दार्थ :—वालिस (वालिश फा०)= ना समझ । सहकार=आम्रश्चूतो रसालोऽसौ सहकारोऽति सौरभः । इत्यमरे २।४।३३ । अर्थात् अति सुगन्धित आम को सहकार कहते हैं ।

स्त्री पुरुष अन्त्यज यहाँ तक कि प्राणिमात्र को सुगमतापूर्वक स्वल्प साधन से भी परम सुगति देने वाली भक्ति अति उदार हैं । साधन के प्रारम्भ से ही जो "आनन्दसिन्धु सुखरासी ।" "सो सुखधाम राम अस नामा" है, वह अपने चाहने वाले को आनन्द देने लगते हैं । भक्ति का फल भगवत्प्रेम परमानन्द देने वाला है । इस अर्थ में भक्ति सुगन्धित आम्रवृक्ष से उपमित होती है । वृक्ष की छाया में जाते ही त्रिताप दग्ध शरीर शीतल हो जायगा । सुगन्ध से मन आमोदित हो जायगा ।

सुरभित स्वादिष्ट आमफल आस्वादन कर पुष्टि तुष्टि स्वतः होगी । भक्तों का पतन नहीं होता— "ताते नास न होइ दास कर " योग ज्ञान आदि बड़े ही क्लिष्ट साध्य हैं । मानो कांटेदार बबूर के पेड़ हों । बबूर की विरल छाया में शरीरका ताप भी नहीं मिटेगा । प्रारम्भिक अवस्था में साधक को इस मार्ग में आनन्दानुभव सम्भव नहीं । पुनः सिद्ध होने पर भी पतन की आशंका बनी रहती है ।

ज्ञान के पंथ कृपान के धारा । परत खगेस लाग नहि वारा ॥

"शुचीनां श्रीमतां गेहे योग भ्रष्टोऽभिजायते ।।" श्रीगीता ६।४१

बबूर वृक्ष में फल नहीं लगता । इसी से तो कहते हैं कि सहकार वृक्ष की उपेक्षा करके बबूर छाया सेवन वाले मूर्ख हैं । वालिस ही तो हैं ।

राम रूप सुख तहँ कहाँ, जो ध्यावत नित सून ।

निधि कि निस्व घर पाइये, जहाँ न सेरक चून ॥२८॥

शब्दार्थ :—सून = निराकारब्रह्म । निधि = द्रव्य खजाना । निस्व (निःस्व)=दरिद्र । सेरक = सेर भर भी । चून (चूर्ण) = पिसान, आटा ।

भावार्थ :—श्रीराम रूप ध्यान का सुख श्रीशंकरजी से पूछिये :—

श्रीरघुनाथ रूप उर आवा । परमानन्द अमित सुख पावा ॥

निर्गुणब्रह्म के ध्यानविधिमें मस्तिकको विचार शून्य करनेका विधान है । मस्तिक शून्य करने वाले के पास सुख कहाँ । जिस

दरिद्र के घर में सेर भर आटा मिलना भी महाल है, वहाँ द्रव्य का खजाना कहाँ ? शून्य ध्याता का सुख सेर भर आटा के बराबर भी नहीं। वहाँ श्रीराम ध्याता वाली सुख की निधि कहाँ मिलेगी ?

विष्णु भक्ति बहु जन्म नर, करि करि होहि पुनीत।
राम भक्ति तब पावहीं, कहत निगम अस नीत ॥२६॥

शब्दार्थ :–पुनीत=पवित्र। निगम=वेद। नीत= स्थापित मत।

कोई साधन तत्पर मनुष्य अनेक जन्मों तक भगवान् विष्णु की भक्ति करके अत्यन्त पावन बन जाय, तब उसे श्री– जानकीपति जू की भक्ति मिलती है। यह सुनिश्चित सिद्धान्त वेदों द्वारा स्थापित है। प्रमाण पिछले दोहा ४ में दिया हुआ है।

प्रश्न :–श्रीविष्णु भक्ति तो एक ही जन्म में मुक्ति दे देती है। प्रमाण भी है :—

अलं व्रतैरलं तीर्थैरलं योगैरलं मखैः।
अलं ज्ञान कथालापै भक्तिरेकैव मुक्तिदा ॥

अर्थात् तीर्थ, व्रत, योग, यज्ञ, ज्ञान, कथालाप से क्या प्रयोजन ? एकमात्र भक्ति ही मुक्ति देने में समर्थ है।

तब वह मुक्त वैष्णव अनेक जन्म पर्यन्त भक्ति करने क्योंकर आवेगा ?

उत्तर :—भगवद्भक्ति से केवल मुक्ति ही नहीं बहुत कुछ मिलती है। जो कल्याण कर्मकांड से, ज्ञान वैराग्य से, योग

से, दान धर्म से तथा अन्यान्य साधनों से सम्भव है, वह सभी कल्याणवस्तु अति शीघ्र भक्ति मात्र से मिल जाती है। स्वर्ग लो मोक्ष लो, भगवद्धाम लो। जो चाहो वही मिलेगा श्रीमद्-भागवत का आदेश है :—

यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्चयत् ।
योगेन दानधर्म्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ॥
सर्वं मद्भक्ति योगेन मद्भक्तो लभतेञ्जसा ।
स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथञ्चिद्यदि वाञ्छति ॥

भक्त की इच्छा पर है। मुक्ति न चाहकर सर्वश्रेष्ठ रामभक्ति पाने के लिये अन्तःकरण की आत्यन्तिक विशुद्धि चाहेगा, तो वह क्यों न मिलेगा ?

❀ श्रीराम भक्ति अनन्यता सापेक्ष है ❀

यहाँ से अगले छः दोहों में श्रीराम भक्ति सिद्ध होने के लिये अनन्यता की आवश्यकता बतावेंगे। अतः अनन्यता क्या है, समझ लेना चाहिये।

सुरनर ईश अनीश दिसि, नहि चितवत चख चाहि।
निज प्रीतम रस मगन रहि, गहि अनन्य अवगाहि ॥
— श्रीअनन्य प्रमोद।

परपति पेखति रेनुका हनी गई ततकाल।
विदित अहिल्या की कथा, बिन अनन्य यह हाल ॥ वही।

अनन्यता सीखनी चाहिये श्रीसुतीक्ष्णजी से—

मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना ।

नाम सुतीछन रति भगवाना ॥

मन क्रम बचन राम पद सेवक ।

सपनेहुँ आन भरोस न देवक ॥

श्रीविनयपत्रिका पद १०४ में अनन्यता का पाठ पढ़िये—

जानकी जीवन की बलि जैहौं ।

चित कहै रामसीय पद परिहरि अब न अनत चलि जैहौं ॥१॥

उपजी उर प्रतीति सपनेहुँ सुख, प्रभु-पद-विमुख न पैहौं ।

मन समेत या तनके बासिन्ह, इहै सिखावन दैहौं ॥२॥

श्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं ।

रोकिहौं नयन बिलोकत औरहि, सीस ईस ही नैहौं ॥३॥

नातो नेह नाथ सों करि, सब नातो नेह बहैहौं ।

यह छर भार ताहि 'तुलसी' जग जाको दास कहैहौं ॥४॥

श्रीदोहावली में श्रीगोस्वामी पादने अपनेको चातक तथा अपने इष्ट श्रीसीतापतिजी को घनश्याम कहकर अपनी चातकी वृत्ति वाली अनन्यता दिखाई है ।

"एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास ।

एक राम--घनश्याम हित, चातक तुलसी दास ॥२७७॥

यहाँ से दोहा ३१२ तक कुल ३६ दोहाओं में अन्योक्ति अलंकार की रीति से अपनी अनन्यता चातक के व्याज से

दिखाई है। इस दोहा-समष्टि को चातक छत्तिसी कहते हैं। अनन्यता सीखने वालों को समझ कर पढ़ना चाहिये।

राम भक्ति भइ जानिये, मन अनन्य अस होय।
ज्यौं चातक तजि स्वाति जल, पिअत न सुरसरि तोय ॥३०॥

शब्दार्थ :—सुरसरि=गंगा। तोय=जल।

भावार्थ :—श्रीराम भक्ति मुझे प्राप्त हो गई है, इसकी पहचान है। अपना मन एकमात्र अपने परम प्यारे इष्टदेवता श्रीकौशल राजदुलारे जू में सब प्रकार से समासक्त हो जाय। दृष्टान्त में चातक को लीजिये। प्यास से छटपटाता पपीहा पियेगा तो केवल स्वाती जल। न मिले तो प्यास के मारे तड़प तड़प कर मर जाना पसन्द करेगा। अन्य जलमें परम पावन गंगा जल भी दिया जाय, तो नहीं छूयेगा। इसी प्रकार:—

लोचन चातक जिन करि राखे।
रहहि दरस जलधर अभिलाषे ॥
निदरहि सरित सिन्धु सर बारी।
रूप बिन्दु जल होहि सुखारी ॥

रसिकाचार्य श्रीमद्युगलानन्य शरणजी महाराज स्वरचित 'अनन्य प्रमोद' नामक पुस्तिका में भी यही कहते हैं :—

अमित ईश यद्यपि विदित, वेद पुरानन बीच।
तदपि न मेरो काज कछु, सियपिय बिन सब मीच ॥

श्रीसीतावल्लभ अखिल जीव ईश सिरताज ।
तिन पद पंकज प्रेम करु, परिहरि सकल समाज ॥

योग ज्ञान वैराग्य दृढ़, सुमति साधु गति धन्य ।
यद्यपि जग दुर्लभ नहीं, दुर्लभ गती अनन्य ॥३१॥

संसार में ऐसे बहुत साधु हैं, जिनमें किसी ने योगका, किसी ने ज्ञान का, किसी ने दृढ़ वैराग्य का, किसी ने सद्बुद्धि का आश्रयण कर लिया है, ये सभी परमार्थ साधक हैं। इनके अवलंबन लेने वाले धन्य हैं। परन्तु सीतारामीय रसिकानन्य भक्त तो अत्यन्त दुर्लभ हैं। खोजने पर लाखों में कोई एक मिलेंगे।

कोटिन कल्प प्रजंत तउ, करै जोग जप ज्ञान ।
तऊ न पहुँचे परम पद, रहित अनन्य विधान ॥

भजन करत सबही सुजन, निज निज रुचि अनुसार ।
पै पावहिं नहिं देस वह, परानन्द सुखसार ॥

सब साधन सम्पन्न फल, मोक्ष बदहि बुध वेद ।
तेहि दिसि दग भरि नहि लखै, निज अनन्य गत खेद ॥

विभिचारी डोलै विपुल, पढ़ि बहु वेद पुरान ।
भजन अनन्य सवाद बिन, सब मत धूरि समान ॥

— श्रीअनन्य प्रमोद से ।

फीके बिना अनन्यता, यद्यपि बड़े महान।
सुन्दरता बरबाद सब, बिना नाक अरु कान॥ ३२॥

भावार्थ :—कोई संत साधन बल से, संसार की दृष्टि में बहुत बड़े महान बन गये हैं, परन्तु अपने इष्टदेवमें अनन्य रूप से प्रेमासक्त नही हैं, तो उनकी महत्ता फीकी है। दृष्टांत देते हैं कि कोई स्त्री सर्वांग सुन्दरी है, किन्तु उनके कान नाक कटे हैं, तो उसकी सारी सुन्दरता व्यर्थ हो जाती है। उपासनाके सौन्दर्य में निखार होता है अनन्यतारूपी नाक कान से।

नाक कान विरहिता सुन्दरी पति का प्रियत्व नहीं पाती है, उसी भाँति अनन्यता हीन भक्त श्रीराघवलाल जू के प्रियत्व से वंचित रह जाता है। श्रीमुख वचन :—

समदरसी मोहि कह सब कोऊ।
सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ॥

त्यागि मतौ पंचायती, सिय रघुवर इक इष्ट।
करिये अस जिय जानिकै, बहुतन आस कनिष्ट॥३३॥

शब्दार्थ :—कनिष्ट = सबसे नीच। पंचायती मतौ = पंचदेव उपासना।

भावार्थ :—स्मार्त वाले पंचदेवता की उपासना धर्मशास्त्र सम्मत मानते हैं। स्वर्ग, पुण्यलोक की प्राप्ति इससे हो सकती है, परन्तु श्रीसीतारामजी के दिव्यधाम के श्रीकनकमहलमें पहुँचने के लिए तो अनन्य उपासना ही एकमात्र साधन

है। एक देवता पर निर्भर रहने पर, सभी सार सम्हार का भार उनपर हो जाता है। बहुतो की आशा करनेवाले गणिका पुत्र के समान सबों से उपेक्षित रहते हैं।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुनः।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥
— श्रीगीता ११।५४

अर्थात् श्रीअर्जुन ! मेरे को तत्वतः जानकर अन्त में मेरे धाम में प्रवेश करे, ऐसा अनन्य भक्ति से ही सम्भव है।

सुचिरं प्रोषितं कान्ते यथा पतिपरायणा।
प्रियानुरागिणी दीना तस्य सङ्गैक कांक्षिणी॥
तद् गुणान्भावयेन्नित्यं गायत्यपि शृणोति च।
तथा राघव लीलादेः स्मरणादि तथा चरेत्॥

अर्थात् किसी पतिपरायणा पतिअनुरागिनी सती साध्वी के पति चिरकाल से परदेश में रहते हैं। उनकी अनुपस्थिति में वह उनसे मिलने की विरह व्याकुलता में एकमात्र पति के ही गुणों का चिन्तन, श्रवण, गान करती है। उसी भाँति रसिक साधक को परमपति श्रीराघव प्राणप्यारे का लीलाचिंतन एवं रूप स्मरण सतत करते रहना चाहिये।

कूकुर जो दर दर फिरै, दुर दुर कह सब कोय।
एक द्वार गहिकै रहै, आदर पावै सोय॥

चातक करि यक इष्टता, जस भाजन सुखमूल ।
भँवर सदा रोवत फिरत, फूल फूल के कूल ॥

शब्दार्थ :—कूल = समीप ।

भावार्थ :—पपीहे को अपने प्रियतम स्वाती की बूँद ही पान करने वाली अनन्यता है । "बूँद आकास पपीहा चाहत यद्पि भरे अनगन सरिता सर ।" अतः सुखी है और संसार में उसके सुयश का गान होता है ।

जग जस भाजन चातक मीना ।
नेम प्रेम निज निपुन नवीना ॥
२ । २३४ । ३

भ्रमर अनन्यता छोड़कर अनेकों पुष्पों के निकट मकरन्द पान के लोभ से भटकता है, कहीं पेट भर अघाता नहीं । अतः रोता फिरता है ।

चातक सतत सराहिये, गहे एक घन आस ।
अपर विहंग कुरंग सब, विगत अनन्य विलास ॥
— श्रीअनन्य प्रमोद से

सीस नवै सियराम को, जीह जपै सियराम ।
हृदय ध्यान सियरामको, नहीं और सन काम ॥ ३५॥

भावार्थ :—सिर झुका कर प्रणाम करे, एकमात्र उन्हीं को जिनके षड़क्षर मन्त्रराज में 'नमः' पद जोड़कर जपते हैं । सर्वस्व समर्पण काल में शिर भी तो उन्हीं को अर्पित हो चुका

है। नमः पद में भी तो समर्पण ही का भाव है, एक को अर्पित वस्तु दूसरे को पुनः कैसे अर्पित होगी? "सीस ईस ही नहीं।" —श्री विनय

हाँ, उनके सम्बन्ध से श्रीगुरुजी को, उनके पार्षद को प्रणाम विधेय है। चराचर में भी उन्हीं को व्याप्त देखकर उन्हीं के नाते से प्रणाम करे।

सीयाराममय सब जग जानी।
करौं प्रनाम जोरि जुग पानी॥

जीह से एकमात्र उन्हीं का नाम जपे।

और नाम जिह्वा नहिं धरि है।
प्रापति समय भ्रमं कछु परि है॥
कनक चाह मुख लोह बतावै।
लोह पाय पाछे पछितावै॥

हृदय में ध्यान सियराम का ही करना चाहिये। "मम हृदय भवन प्रभु तोरा।" उनके खाश घर में दूसरे को कैसे घुसने देंगे? अनन्य उपासक को दूसरे से कोई प्रयोजन ही क्या? श्रीदशरथनन्दन जानकीकांत अयोध्या बिहारी जो कहाते हैं, वही नामरूप लीला वाले हमारे इष्ट हैं। भिन्न नाम, धाम रूप, लीला वाले और कोई होंगे! उनसे हमारा क्या मतलब?

अन्यान्य रसिकाचार्यो का भी यही सिद्धान्त है—

कथा सुनै सियराम की, गुन गावै सियराम।
लखै रूप सियराम को, जपै नाम सियराम॥

पतिव्रता को नेम करि, आन पुरुष नहि सूझ।
अपर देव परसे नहीं, बिलसै और न बूझ॥

— श्रीसुधामुखी कृत श्रीरसिकवस्तु प्रकाश से।

श्रीमत्कृपानिवास स्वामीजी स्वरचित अनन्य चिन्तामणि नामक ग्रन्थ में षट प्रकार की अनन्यता बताते हैं।

१—नामानन्य=(क) अपने ही इष्ट सम्बन्धी शरणान्त या दासान्त नाम अपना लोक से कहवावै। (ख) जीभ से केवल अपने इष्ट का ही नाम जपें।

२—वाक्यानन्य=वाणी से अपने ही इष्ट की लीला कथा गुणगान आदि करे। अन्य कार्य में वाणी लगाकर व्यभिचार दोष न लगावे।

३—क्रियानन्य=शरीर की कर्मेन्द्रियों से जो भी क्रिया बन पड़े, वह श्रीजानकीबल्लभलाल जू का कैंकर्य रूपक हो।

४—लक्षणानन्य=कंठी, तिलक, पंच मुद्राओं की छाप, आदि सभी बाह्य दृश्य चिन्ह अपने ही इष्ट के सम्बन्ध वाला होवे। शंख चक्र की छाप नहीं, श्रीधनुषबाण की तप्त छाप अंकित करावे।

५—भक्षानन्य, अर्थात् प्रसादानन्य। श्रीसीताराम युगल जोड़ी को भी उन्हीं के युगल मन्त्र से अर्पित भोग को प्रसाद मानकर सेवन करें। जिस सिंहासन पर अनेक देवता हों, अथवा अकेले बाल रूप श्रीराम लला होवे, वहाँ की प्रसादी नहीं लेवे।

६—प्राप्ति की अनन्यता यह है कि दिव्य कनक महल की नित्य टहल छोड़कर, अन्य वस्तु अस्वीकार हो।

रंग महल प्रापति मन भाई।
आन प्राप्ति दुख नर्क सदाई॥
नर्क जाइबो जानि भल, परपति धाम न जाय।
नर्क कबहु पति याद ह्वै, जार लगे बिसराय॥

❀ श्रीसियावल्लभ-ऐश्वर्य ❀

जानै सब सियराम के, कला विभूती अंस।
रामनुशासन अनुसरत, हरि हर वाहनहंश॥३६॥

शब्दार्थ :—वाहन हंस=ब्रह्माजी।

हमारे इष्ट श्रीजानकीवल्लभलाल जू १-ज्ञान, २-शक्ति ३-बल, ४-ऐश्वर्य, ५-वीर्य और ६-तेज—भगवद्वाच्य छः प्रधान गुणों के साथ अनन्त दिव्य गुणगणों से विभूषित परिपूर्णतम परात्परत्तम ब्रह्म है।

ज्ञान शक्ति वलैश्वर्य वीर्य तेजांस्यशेषतः।
भगवच्छब्द वाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः॥
— श्रीभगवद्गुण दर्पणे।

दिव्यानन्त गुणः श्रीमान् दिव्य मङ्गल विग्रहः।
षड्गुणैश्वर्य सम्पन्नो मनोवाचामगोचरः॥

आपके अंशावतार में भी प्रायः उपर्युक्त छः गुण होते हैं। यद्यपि आपही से प्रगट होते हैं, तथापि भगवान ही हैं। भगवान श्रीकृष्ण, श्रीनृसिंह त्रिदेव आदि आपके अंशावतार हैं।

पूर्णः पूर्णावतारश्च श्यामो रामो रघूद्वहः।
अंशा नृसिंह कृष्णाद्या राघवो भगवान्स्वयम्॥

— श्रीब्रह्मसंहितायाम्।

श्रीराधिकाजी श्रीमैथिली जू के अंशावतार हैं।

हर्षिता राधिका तत्र जानक्यंशसमुद्भवा।
रामस्यांश समुद्भूतः कृष्णो भवति द्वापरे॥

— श्रीभुशुण्डि रामायण।

शम्भु विरंचि बिष्णु भगवाना।
उपजहि जासु अंश ते नाना॥

ब्रह्म विष्णु महेश्वराद्या यस्यांशाः लोक साधकाः।
तमादि देवं श्रीरामं–विशुद्धं परमं भजे॥

विभूति अवतारः—ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज—छः गुणों में से ऐश्वर्य, तेज और शक्ति तीन गुण लेकर 'विभूति' अवतरित होते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीतामें विभूति का वर्णन करते हुये भगवान् ने उनमें उपर्युक्त तीन गुणों का होना आवश्यक बताया हैं।

यद्यद्विभूति मत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेवच।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंश संभवम्॥ १०।४१॥

कलावतार में छः गुणों में से कोई एक दो ही गुण होते हैं—ऋषिगण, चौदह मनु, देवता, मनुपुत्र, प्रजापति आदि कलावतार माने जाते हैं—

ऋषयः मनवो देवाः मनुपुत्राः महौजसः ।

कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा ॥

श्रीब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये त्रिदेव श्रीराघवलालजू की आज्ञा के अनुसार अपना-अपना कार्य करते हैं ।

विधि हरि हरु ससि रवि दिसिपाला·········।

करि विचारि जियँ देखहु नीके ।

राम रजाइ सीस सबही के ॥

अतः सम्पूर्ण ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य, इन छः प्रधान गुणोंके साथ-साथ पोषण, भरण आधार, शरण्य सर्वव्यापक, और कारुण्य नामक षड्गुणोंसे सम्पन्न श्रीजानकी कान्त ही स्वयं भगवान् हैं ।

ऐश्वर्यश्च समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।

ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥

पोषणं भरणाधारं शरण्यं सर्व व्यापकम् ।

कारुण्यं षड्भिः पूर्णो रामस्तु भगवान्स्वयम् ॥

— श्रीभगवद्गुण दर्पणे

सबै उपासिक जानिये, रामसिया उपास्य ।

याँचत कर संपुट किये, दीजै निज पद दास्य ॥३७॥

भावार्थ :- श्रीसाकेताधीश परात्परतम ब्रह्म श्रीसीताराम ही सभी अवतारों के इष्टदेवता हैं। सभी इन्हीं की उपासना करते हैं। श्रीसदाशिव संहिता में श्रीलषणलालजू ने वेदों को बताया है कि श्रीमत्स्य, श्रीकूर्म भगवान, श्रीवाराह तथा श्रीनृसिंह भगवान्, भगवान् विष्णु, श्रीवामन भगवान्, श्रीपरशुरामजी, श्रीहलधर, श्रीकृष्ण, श्रीबुद्ध, श्रीकल्कि आदि सभी व्यापक ब्रह्म श्रीरामजी की ही उपासना करते हैं।

कौशल्यानन्दनं रामं केवलं भवखंडनम्...... ...... ।
मत्स्य कूर्म वराहश्च नृसिंह हरि वामनैः ॥
भार्गव हलि कंसारि बुद्ध कल्किभिरुद्यतैः ।
उपास्यमानं देवेशं देवानां प्रवहं विभुम् ॥

उपर्युक्त सभी अवतार हाथ जोड़कर श्रीराघव जू से प्रार्थना करते रहते हैं कि कृपया अपने श्रीचरणों की सेवकाई हमें दीजिये— श्रीअंगदजी ने रावण से कहा—

सिव विरंचि हरि मुनि समुदाई ।
चाहत जासु चरन सेवकाई ॥
तासु दूत होइ हम... ... ... ॥

यहि विधि धरि ऐश्वर्य चित, पुनि सब विधि माधुर्य।
धरे चित्त तेहि जानिये, राम भक्ति अति धूर्य ॥३८॥

शब्दार्थ :—धूर्य=धुरन्धर, आचार्य कोटि गत।

भावार्थ :—उपर्युक्त रीति से अपने इष्ट श्रीजानकी-वल्लभलाल जू में परतत्व विषयक परम ऐश्वर्य भाव चित्त में धारण करे। क्योंकि इसके बिना इष्ट में सुन्दर अनन्यता नहीं जमती।

जौलौं निज प्रिय इष्ट मधि, करति न मति परतत्व।
तौलौं होइ अनन्यता, नहि दृढ़ता शुचि सत्व॥
— श्रीअनन्य प्रमोद।

ऐश्वर्य ज्ञानके पश्चात् सब प्रकारका माधुर्य भाव अपने चित्त में धारण करने वाले ही श्रीराम उपासकों में धुरन्धर माने जाते हैं।

जाने जग सियराम तैं, उद्भव पालन नास।
तीन शक्ति सियराम की, करै तीन में वास॥३६॥

हरि मैं पालन सृजन विधि, शंकर मैं पुनि नास।
ऐसे प्रति ब्रह्माण्ड मैं, विधि हरिहर कर वास।४०॥

भावार्थ :—साधक को जानना चाहिये कि सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और महाप्रलयान्त में नाश के आद्य कारण श्रीमैथिलीकांत ही हैं।

ब्रह्माण्डानामसंख्यानां ब्रह्मविष्णुहरात्मनाम्।
उद्भवे प्रलये हेतू राम एव इति श्रुति॥
— श्रीकल्याण कल्पद्रुम पृ० २८।

अर्थात् वेद करते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु, शंकर से संयुक्त अनन्त ब्रह्माण्डों के उद्भव, प्रलय के कारण श्रीराम ही हैं। त्रिदेवों को श्रीराघव जू ने अपने अंश से उत्पन्न किया हैं। तीनों को अपने अपने पदों पर नियुक्त करने वाले आपही हैं। आपही की दी हुई शक्ति से तीनों उत्पन्न, पालन और संहार करते हैं। प्रमाण श्रीमानस—

संभु विरंचि विष्णु भगवाना।

उपजहि जासु अंस ते नाना॥ १।१४४।६

हरिहि हरिता, विधिहि विधिता, सिवहि सिवता जो दई।

सोइ जानकीपति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई॥

— श्रीविनय पत्रिका १८५।२

जाके बल विरंचि हरि ईसा।

पालत सृजत हरत दससीसा॥ ५।२१।५

लोक लोक प्रति भिन्न विधाता।

भिन्न विष्नु सिव मनु दिसित्राता॥ ७।८१।१

महाविष्णु श्रीराम के, दिव्य गुनन को रूप।

ताते तीनों जानिये, विधि हरिहर जगभूप॥४१॥

भावार्थ :—श्रीरघुलालजू के दिव्य गुणगण समष्टि के मूर्तिमान विग्रह हैं भगवान् महाविष्णु। पुनः इन्हीं महाविष्णु से ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों जगदीश प्रगट हुये हैं। ऐसा जानना चाहिये।

"यस्यांशेनैव ब्रह्म विष्णु महेश्वरा अपि जाता महाविष्णु-र्यस्य दिव्यगुणाश्च स एव कार्य कारणयोः परः परमः पुरुषो रामो दाशरथि र्वभूव। — अथर्वणीय श्रुतिः।

अर्थात् जिनके अंश से ब्रह्मा, विष्णु, महेश उत्पन्न हुये हैं। महाविष्णु जिनके दिव्यगुणों के स्वरूप है, वही समस्त कार्यकारणों से परे परम पुरुष परात्पर ब्रह्म श्रीदशरथनन्दन रूप से आविर्भूत हुये हैं।

जनकसुता के अंश तें, महालक्ष्मि गुन खानि।
तातें यह तीनों भईं, उमा रमा ब्रह्मानि ॥४२॥

भावार्थ :—श्रीजनकराजेन्द्रनन्दिनी जू के अंश से दिव्य गुणगणों की खान भगवती महालक्ष्मी प्रगट होती हैं। तथा इन महालक्ष्मी के अंश से अनन्त उमा, रमा, ब्रह्माणि उत्पन्न हुई हैं।

सीता कलांशात्सख्यश्च शक्तयः सम्भवन्ति ताः।
यासां कला कलांशेन जाता नार्य्यश्र्यादयः॥

— श्रीमहाशम्भु संहितायाम्।

अर्थात् श्रीमैथिलीजी के अंशकला से सखियाँ, शक्तियाँ (उन्हीं में श्रीमहालक्ष्मीजी) उत्पन्न होती हैं। उन्हीं की अंश-कला से श्रीलक्ष्मी आदिक उत्पन्न होती हैं।

जासु अंस उपजहिं गुनखानी।
अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥

भृकुटि विलास जासु जग होई।

राम बाम दिसि सीता सोई ॥

— श्रीमानस १।१४८।३।४

पारब्रह्म जो कहत श्रुति, रामप्रिया तन भास।

व्यापित चर अरु अचर मैं, चिन्मय यथा अकास ॥४३॥

भावार्थ :—श्रुति भगवती कहती हैं कि जो चराचर व्यापक चिन्मय परब्रह्म आकाश की भाँति सर्वत्र परिपूर्ण हैं, वह श्रीसीतारामजी के श्रीविग्रह का प्रकाश मात्र है।

एकं चापि परं समस्त जगतं ज्योतिर्मयं कारणं,
प्रागन्ते च विकारशून्यमगुणं निर्नाम रूपञ्च यत्।
तच्छ्री रामपादारविन्द—नखर प्रान्तस्य तेजोऽमलं,
प्रज्ञा बेदविदा बदन्ति परमं तत्वं परं नास्ति यत् ॥

— परमहंसस्य परमसिद्धान्त संहितायाम्

अर्थात् वेद के ज्ञातागण कहते हैं कि ब्रह्म ज्योतिर्मय है, सर्वकारण है, अद्वय है, समस्त जगत् से परे हैं। आदिसे अन्त तक विकार शून्य रहने वाला है, वह निर्गुण है, नाम-रूप से रहित है। वही परमतत्व है, उससे बढ़कर कोई है ही नहीं। किन्तु त्रिकालदर्शी परमहंसों का कहना है कि वह ब्रह्म-प्रकाश तो श्रीजी के सहित श्रीरघुलाल जू के चरण नखमणि का प्रकाश मात्र है।

कृष्णादिक अवतार सब, राम अंश तें जानु ।
श्री भू लीला तीन यह, सिया अंश अनुमानु ॥४४॥

शब्दार्थ :—श्री=धन की अधिष्ठात्री देवी श्रीलक्ष्मीजी, भू=भूरंडाधार उच्यते (श्रीमन्महारामायणे) अर्थात् अनन्त ब्रह्मांड गोलकों की आधारभूता । लीला=(लीला बहुविधा लीला श्रीमहारामायण) अर्थात् लीलाशक्ति बहुत प्रकार की लीला रचने वाली है ।

भावार्थ :—श्रीकृष्णादिक अवतार सब श्रीराम अंश से प्रगट होते हैं । श्रीसिया जू के अंश से श्री, भू, लीला—ये तीनों प्रधान शक्तियाँ प्रगट होती हैं ।

नाम रूप लीला विविध धाम अवधि सुखदानि ।
ये चारो सियराम के, परतर वेद बखानि ॥४५॥

भावार्थ :—नाम, रूप, विविध लीलायें, निरवधि सुख-दायक श्रीअवध धाम श्रीरघुलालजी के ये चारो और अवतारों से बढ़कर महिमामय हैं । ऐसा स्वयं वेद कहते हैं ।

अथर्वण वेदे वेदसारोपनिषद् प्रथम खण्ड में लिखा है कि एक बार श्रीविदेह जनकजी श्रीयाज्ञवल्क्यजीके समीप जा-कर पूछते हैं—सुनिश्चित रूपसे कौन ऐसे महापुरुष हैं जिनको जानकर इस संसार से मुक्त होवें । उन्होंने बताया "कौशल्या-नन्दन श्रीरघुनाथ ही ऐसे महापुरुष हैं । उनके नाम, रूप, धाम और लीला की महिमा मन वचन से अगम्य है ।

"जनको ह वैदेहो याज्ञवल्क्य मुपसृत्य पप्रच्छ को ह वै महान्पुरुषो यं ज्ञात्वेह विमुक्तो भवतीति ॥" स वाच। कौशल्येयो रघुनाथ एव महापुरुषः। तस्य नाम रूप धाम लीला मनोवचनाद्यविषयाः।"

रामस्य नामरूपञ्च लीला धामं परात्परम्।
एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्द विग्रहम्॥

— श्रीवशिष्ट संहिता अ० ६।

अवध सुधाम पै सकल लोक धाम वारौं
वारौं नाम और रामधाम सुधाधार पै।
रामायन लीला पै सकल ईश लीला वारौं
और प्रभुताई राम प्रभुता अपार पै॥
वारौं 'रसरंग' राम अनंग पै अनंग कोटि
प्रान वारौं राम के स्वभावशील प्यार पै।
रामतन तेज पैं ब्रह्मनिराकार वारौं
दश अवतार दशरत्थ के कुमार पै॥

—❀ श्रीरामनाम महत्व ❀—

नारायन आदिक अमित, भगवत नाम उदार।
रामनाम के अंश ते, सिद्ध कहत श्रुति चार॥४६॥

भावार्थ:—श्रीसगुण साकार ब्रह्म के श्रीनारायणादि असंख्येय नाम हैं। सभी परमपद देने में उदार हैं। किन्तु

चारो वेदों के कथनानुसार सभी श्रीरामनाम के अक्षरांश से ही सिद्धि देने में समर्थ हैं।

श्रीमहाशम्भु संहिता में श्रीमैथिली जू ने श्रीरघुराज-दुलारे से कहा है, प्राणनाथ ! कोई तो आपके मन्त्रराज के बीजाक्षर को मन्त्रश्रेष्ट बताते हैं, कोई ऊँकार को बताते। किन्तु मेरे मतसे तो ये दोनों मन्त्र श्रेष्ट भी आपके नामाक्षर से ही सिद्ध होते हैं। (तब आपही बतावें कि आपके नाम बड़े कि अन्य मन्त्र ?)।

प्रणवं केचिदाहुर्वै वीजं श्रेष्टं तथापरे।
तत्तु ते नामवर्णाभ्यां सिद्धिमाप्नोति मे मतम् ॥

अइउण्। ऋऌक्। आदि स्वर व्यञ्जनात्मक सभी अक्षर मय माहेश्वर सूत्रों को अपने डमरु की ध्वनि में प्रगट करने वाले वर्णो के मर्मज्ञ भगवान् शकर कहते हैं कि क्या वेद में, क्या व्याकरण में जितने स्वर व्यंजन वर्ण हैं, सभी रामनाम ही से उत्पन्न हुये हैं—इसमें कोई संशय नहीं।

वेदे व्याकरणे चैव ये च वर्णाः स्वरा स्मृताः।
रामनाम्नैव ते सर्वे जाता नैवात्र संशयः ॥

— श्रीमहारामायणे।

श्रीनारायण आदि भगवन्नाम वर्णों से ही तो बनते हैं। वर्णों के कारण श्रीरामनाम ही हैं। अतएव सभी नामों के कारण श्रीरामनाम स्वतः सिद्ध हैं।

इसी से श्रीपद्मपुराण में श्रीब्रह्माजी ने श्रीनारदजी से कहा है कि सभी भगवन्नामों में यावत् वैभव हैं, श्रीरामनामसे ही प्राप्त हैं, अतः श्रीरामनाम ही जपो। मैंने अच्छी प्रकार से जानकर कहा है।

सर्वेषां हरि नाम्नां वै वैभवं रामनामतः।
ज्ञातं मया विशेषेण तस्मात् श्रीनाम संजप॥

सीतारामजु नाम दोउ, मम ऐश्वर्य उदार।
कहत ईशता एककी, दोऊ की उरधार॥४७॥

श्रीरामचरित मानस में श्रीगोस्वामिपाद ने श्रीरामनाम की वन्दना करने के पहले सीताराम उभय नामों को तत्वतः एक कहा है। उनका तात्पर्य यही है कि श्रीरामनामके ऐश्वर्य जानकर पाठक श्रीसीतानाम का ऐश्वर्य भी उतना ही समझें।

गिरा अर्थ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
वन्दौं सीताराम पद, जिनहि परम प्रिय खिन्न॥

गढ़नी वास्तव एकता, श्रवण सुमन गति दोय।
कथन एक के जानिये, दूसरहू तस होय॥४८॥

शब्दार्थ :—गठनी=दोनों मिलाकर एक होना।

तत्त्वतः एकही अखण्ड अद्वय ब्रह्म माधुर्य लीला सम्पादन करने के निमित्त अनादि सिद्ध युगल पति पत्नी का स्वरूप धारण किये हुये हैं। दोनों की ललित सुमधुर लीलायें सुनने पर, युगल नाम, रूप, गुण, लीलाधारी अद्वय ब्रह्म को

मनभी समझ लेता है कि दोनों न्यारी-न्यारी लीला करने वाले दो हैं। परन्तु बुद्धिसे विचारनेपर दोनों तत्त्वतः एकही सिद्ध होते हैं। अतः एकही श्रीरामनामका प्रभाव, परत्व, महत्व जहाँ-जहाँ कथन किया गया है, वहाँ वहाँ जान लेना चाहिये कि दूसरे श्रीसीतानाम का ऐश्वर्य भी वही और उतनाही है।

श्रीजानकी विलासोत्तममें कहा गया है, श्रीराम ही सीता है। श्रीजानकी ही रामचन्द्र है। दोनोंमें कोई भेद नहीं कहा गया है। इस विचित्र तत्त्वको मानकर सन्तजन संसार की मृत्युसे, कालसे पार पा गये हैं।

रामः सीता जानकी रामचन्द्रो
नाहु भेदो ह्येतयोरस्ति किञ्चित्।
सन्तो मत्वा तत्त्वमेतद्विचित्रं
पारं याताः संसृते मृत्युकालात्॥

नारायण अष्टाक्षरी तामें सार रकार।
करिये भिन्न रकार तो, होत अशुद्ध उचार॥४९॥

नाय नाय अष्टाक्षरी, पंचाक्षरि नशिवाय।
रहित रकार मकार के, तेहि युत पुनि फलदाय॥५०॥

भावार्थ :—सम्पूर्ण रामनामकी महिमा तो अगम-अपार है। श्रीरामनाममें प्रयुक्त र और म अक्षर भी अनन्त फलदायक मन्त्र हैं। श्रीब्रह्मयामल नामक मन्त्रग्रन्थमें रकार

सभी जीवों के सर्व पाप जलाने वाले कहे गये हैं । "रकारः सर्व जीवानां सर्व पापस्य दाहकः ॥" इसी भाँति मकार को सर्वशास्त्र सिद्धान्तसार एवं सर्व मुक्तिदायक कहा गया है ।" "मकारः सर्वशास्त्राणां सिद्धान्तः सर्वमुक्तिदः ॥" दोनों वर्णरत्नों के प्रभाव आप स्वतन्त्ररूपसे वहीं श्रीब्रह्मयामलमें पढ़ें । यहाँ बानगी मात्र दिखायी गयी है ।

कहने का तात्पर्य यही है कि सभी प्रचलित मन्त्रोंमें जो प्रभाव भरे हैं, उसका कारण है रकार या मकार या दोनों की स्थिति उन उन मन्त्रों में । नमूना के लिये अष्टाक्षर नारायण मन्त्र लीजिये । 'नमो नारायणाय' इनसे रकार मकार हटाकर देखिये । "न ना य णा य ।" अशुद्ध उच्चारण हुआ कि नहीं ? इसके जपनेसे फल? आपही बताइये । पुनः पंचाक्षरी श्रीशिव-मन्त्र को लीजिये, "नमः शिवाय" इससे मकार निकाल लीजिये । क्या रहा ? "न शिवाय ।" जपिये । विपरीत फल! इसीसे तो कहते हैं कि श्रीराममाम पूरा न जपना बने तो दोनों में से कोई एक ही अक्षर ले लीजिये । चाहे किसी भी मन्त्र में इसे मिला लो, जपो फलदायक होगा ।

यही बात श्रीशुक संहिता में कही गई है ।

नाय नाय यद्दते ऽक्षराष्टकं
पञ्चकं च न शिवाय यद्विना ।
मुक्तिदं भवति यद्द्वयोवंशा–
त्तद्द्वयं वयमुपास्महे किल ॥

अर्थात् रकारके बिना अष्टाक्षर नारायण मन्त्र नाय-नाय रह जाते हैं तथा पञ्चाक्षर श्रीशिवमन्त्र मकार के बिना नशिवाय हो जाते हैं। इन दोनों वर्णोंके प्रभावसेही उपर्युक्त मन्त्र मुक्तिदायक बनते हैं। अतः हम लोग उन दोनों वर्णों को मिलाकर पूरा श्रीरामनामहीकी निश्चयपूर्वक उपासना करते हैं।

रामनाम अशांश तें, होत प्रनव पुनि सिद्ध।
सो सब मन्त्रन पर लसत, ताबिन मन्त्र असिद्ध ॥ ५१ ॥

भावार्थ :– प्रणव कहते हैं ॐ को। यह वेद के प्राण-भूत हैं। सभी अल्पवीर्य मन्त्रोंके आदिमें ॐ प्रणवकी योजना की जाती है। ॐ सहित मन्त्र प्रवल बनकर सिद्धि-दायक बन जाते हैं, अन्यथा अल्पवीर्य मन्त्र सिद्ध नहीं होते। ऐसे सर्व मन्त्रशिरोमणि प्रणव भी श्रीरामनामाक्षरों से ही सिद्ध होता है।

रामनाम्नः समुत्पन्नो प्रणवः मोक्षदायकः।
— श्रीमहारामायण।

अतः श्रीरामनाम परात्पर मन्त्र है।

द्विभुज श्याम दशरथ कुँवर, राम रु जनककुमारि।
कारज कारन तैं परैं, उनहि कहत श्रुति चारि ॥५२॥

भावार्थः—दो भुजा वाले साँवरे सलोने चक्रवर्ती श्रीदश-रथजूके दुलारे, राजकुमार तथा योगियों ज्ञानियोंको भी ब्रह्म-ज्ञान सिखाने वाले श्रीविदेह महाराज श्रीजनकजी की राज-

दुलारी ललित लड़ैती नित्य किशोरी श्रीसिया महारानी दोनों प्रियाप्रियतम कार्य नाम जगत और जगदीश त्रिदेव, कार्य नाम महाविष्णु, महालक्ष्मी—दोनों से परे सर्वतन्त्र स्वतन्त्र स्वेच्छाचारी परात्परतम ब्रह्म हैं। ऐसा चारों वेद कहते हैं।

"यस्यांशेनैव ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा अपि जाता महाविष्णु र्यस्य दिव्यगुणाश्च स एव कार्य कारणयोः परः परमः पुरुषो रामो दाशरथिर्बभूव।" — अथर्वणीय श्रुति।

अर्थात् जिनके अंशसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और महाविष्णु प्रगट हुये हैं, जिनमें परम दिव्य अनन्त गुण हैं। वह कार्य कारण से परे परात्पर प्रभु श्रीदशरथ नन्दन राम हुये।

रामरूप रूपन पती यथा नृपति पति राम।
एक दुइक गुन कहुं लसत, राम अमित गुन धाम ॥५३॥

भावार्थ: जितने रूपवान देखे सुने जाते हैं, उन सबों से बढ़कर रूप होने से रमणीय रूपार्णव रघुलालजी रूपों के पति कहे गये हैं।

जुवती भवन झरोखन्ह लागीं।
निरखहिं राम रूप अनुरागीं॥
कहहिं परस्पर वचन सप्रीती।
सखि इन्ह कोटि काम छवि जीती॥
सुर नर असुर नाग मुनि माहीं।
सोभा असि कहुँ सुनिअत नाहीं॥

विष्नु चारि भुज विधि मुख चारी ।

विकट वेष मुख पञ्च पुरारी ॥

अपर देउ अस कोउ न आही ।

यह छवि सखि पटतरिअ जाही ॥

पुनः सभी मण्डलेश्वर राजाओं के मुकुटमणि चक्रवर्ती सम्राट् भी वही राघवजू हैं । अतः उन्हें नृपति-पति कहा गया ।

भूमि सप्त सागर मेखला ।

एक भूप रघुपति कोसला ॥

दिव्यानन्त कल्याण गुणगण सिन्धु श्रीराघव जू में—

१-सौन्दर्य, माधुर्य, लावण्य, सौगन्ध्य, सौकुमार्य आदिक असंख्य कायिक गुण हैं ।

२-उसी प्रकार दया, कृपा, करुणा, अनुग्रह, वात्सल्य, सौशिल्य, सौहार्द आदि मानसिक गुण भी असंख्य हैं ।

३-पुनः मितभाषिता, सत्य, प्रिय हित साधक बचन बोलना ।

"गान्धर्वेषु च भुवि श्रेष्ट बभुवः भरताग्रजः" कहकर कर श्रीमहर्षि वाल्मीकिने आपको संगीत विद्यामें भू-मण्डल भरमें सर्वश्रेष्ट बताया है—ये सब आपके वाचिक गुण हैं । सभी मिलाकर आपके दिव्यगुणोंकी गणना सम्भव नहीं हैं । इसी दृष्टिसे भगवान शंकरजीने "राम अनन्त अनन्त गुनानी" तथा श्रीकाकर्षि ने—"राम अमित गुन सागर थाह कि पावई

कोई ॥" कहा है। आपके अनन्त गुणोंमेंसे एक दो गुण किसी को मिला तो बड़ा गुणवान् कहाने लगता है।

❀ श्रीजानकीजीवन जू की राजमाधुरी ❀

यद्यपि श्रीपति सुभग अति, सियपिय सम नहि राज।
चारि भुजा वाहन गरुड़, सबै अडबडी साज ॥५४॥

भावार्थ:—श्रीलक्ष्मीकांत भगवान् नारायण अत्यन्त सुंदर और ऐश्वर्य सम्पन्न हैं, होना भी चाहिये। उनकी पत्नी श्रीजी शोभा और ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी जो हैं।

परन्तु श्रीजानकीकान्त जू की तो बात ही और है। अत: इनकी बराबरी कैसे करेंगे ? ऐश्वर्य में तुलना कीजिये तो श्रीराघव जू कोटि विष्णु सम पालनकर्त्ता हैं। माधुर्य तो नरवत् लीला को कहते हैं। 'उमा करत रघुपति नर लीला।' नर को चार हाथ तो होते नहीं। राम ! राम !! नरशोभा ही बिगड़ गई। किसी आदमीको आपने चिड़िये की सवारी करते देखा है ? गरुड़ है श्रीलक्ष्मीपति की सवारी ! इतना धन है श्रीलक्ष्मीजी के पास, तो अपने पतिदेव के लिए रथ, विमान क्यों नही बनवा देतीं ? अधिक नहीं कहेंगे। समुद्र में निवास और विषधर साँप की छाती पर सोना ! विशेष पोल नही खोलेंगे। सभी बातें वहाँ अटपटी हैं।

नरजाति का नेह-नाता तो अपने सजातीय पुरुषोत्तम रघूत्तमजी से ही बनना सम्भव है।

अच्छा एक बात और बताइये—श्रीलक्ष्मीपतिजी के माता-पिता भाई आदिक सम्बन्धी है कि नहीं? नही हैं। तब श्रीलक्ष्मीजी किसको सास, ससुर, देवर आदि स्वजन कहेंगी? लीजिये! वहाँ सम्बन्ध माधुरी भी नही है। भाई, हम लोग माधुर्य उपासक हैं माधुर्य! खट्टा नहीं रुचता है। माधुरी चाहिये, माधुरी!

गज घोड़े रथ पालकी, मनि भूषित बहु रंग।

कोटिन सो असवार युत, कोटिन कोतल संग ॥५५॥

शब्दार्थ :—कोटिन=असंख्य। कोतल=बिना सवार के ही खाली सुसज्जित।

भावार्थ :—

राम राज कर सुख सम्पदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा॥

श्रीकौशलेन्द्रजू की वाहनशालामें नाना प्रकार की असंख्य सवारी हैं। देखना हो तो किसी शोभा यात्रा के अवसर पर सवारियों का ठाट देख लेना। रंग-विरंग की अनमोल मणियों से अलंकृत असंख्य हाथी, घोड़े, रथ, पालकी देखिये। असंख्यों पर तो सवार बिराजे हैं। असंख्य खाली साथ-साथ जा रही है। अवसर विशेष पर काममें लाने के लिये। रास्ते में इष्ट मित्र बन्धु-बान्धव मिल गये तो उन्हें इन पर बैठाते जायेंगे। किसी याचकने सवारी की याचनाकर दी तो, "मंगन लहहि न जिनके नाहीं।' ऐसो को उदार जग माही।" के

यहाँ याचक बिमुख नहीं जाता। सजी हुई सवारी मिलेगी आपको चाहिये क्या ?

चतुरंगी सेना अमित, चलत हलत अहिनाथ।
वंदीजन विरदावली, वदत सुकोटिन साथ ॥५६॥

शब्दार्थ :—अहिनाथ=शेषजी। वदत=गान करते हैं।

भावार्थ :—उपर्युक्त सवारी-वर्णन के क्रम में कहते हैं कि १- रथारोही, २- गजारोही, ३- अश्वारोही तथा ४-पदचर योद्धा। चारो मिलकर चतुरंगिणी सेना बनाते हैं, ये असंख्य हैं। भाई,—

रामनाम गुन चरित सुहाये।
जनम करम अगनित श्रुति गाये॥

वहाँ किसी भी चरितांगकी गणना अज्ञता ही तो हैं। हाँ, तो जब श्रीकौशलेन्द्र जू की चतुरंगिणी सेना चलती है तो उस भार को धरणीधर शेष भगवान् नहीं सह सकते हैं। उनका मस्तक मारे भारके हिलने लगता है। उस सेनाके साथ महा-राजाधिराज श्रीराघवेन्द्र सरकारके सुयशका गान करते हुये असंख्य बन्दी (भाँट) लोग भी चलते हैं। राजमाधुरी है, राजमाधुरी !

कनक छड़ी कर मनि जनित, कोटिन सँस चोपदार।
कोटिन गावत जाँगरे, करि करि जस विस्तार ॥५७॥

शब्दार्थ :— कनक=सोने की। जाँगरे=भाट, बन्दी।

चोपदार=छड़ी लेकर आगे आगे चलने वाला नकीब। हटो-हटो, रास्ता खाली करो। महाराज की सवारी आ रही है। ऐसा चिल्लाने वाले।

भावार्थ :—आपकी सवारीके आगे चलने वाले असंख्य नकीब रहते हैं। उनके हाथोंमें सोनेकी मणिनग जटित छड़ी होती है। बन्दीजन भी गान करते चलते हैं। उनके गानका विषय होता है आपके सुयशका अतिरञ्जन, बढ़ा-चढ़ाकर कहना।

यहाँ हम बन्दियों द्वारा अतिशयोक्ति अलंकार विभूषित सुयश को एकाध बानगी प्रस्तुत करते हैं।

एक बन्दीने कहा—हे राजेन्द्रमौलिमणे! यदि आप अत्युक्ति से कुपित न हों और मेरे वचनको मिथ्यावाद न मानें तो मैं कुछ कहूँगा? यदि आप कहें कि भय है तो कहते क्यों? उत्तरमें मैं निवेदन करुँगा कि आपके अद्भुत यशोगानके निमित्त किसकी जीभ नहीं चटपटाती है?

अत्युक्तो यदि न प्रकुप्यसि

मृषावादं न चेन्मन्यसे।

तद्ब्रूमोऽद्भुत कीर्तनेन रसना

केषां न कराडूयते॥

— श्रीहनुमान्नाटक १४।८३

हे महाराधिराज! दिग्वधूटियों ने आपकी कीर्ति रूपी धानको कूटा। कैसे? सुमेरुपर्वतका बनाया ऊखल, आकाश गंगा का मूसल। कूटनेपर चावल समान सुयश सार बन गया

तुषारशिखर हिमालय, चावल कण बन गये आकाश के तारा-गण और धूल बन गई चन्द्रमण्डल की चिकनी चाँदनी।

कृत्वा मेरुमुलूखलं रघुपते वृन्देन दिग्योषितां
स्वर्गङ्गा मुसलेन शालय इव त्वत्कीर्तयः काण्डताः,
तासां राशिरसौ तुषारशिखरी तारागणास्तत्कणाः
प्रोद्यत्पूर्ण सुधांशु बिम्बमसृण ज्योत्स्नाश्च तत्पांसवः॥
— श्रीहनुमान्नाटक १४.८५

दूसरे वन्दीने कहा—राजराजेश्वरेन्द्र ! कुछ मेरी भी सुन लीजिये। आपके उज्ज्वल सुयशने सम्पूर्ण जगत् को उज्ज्व-लतासे आच्छादित कर दिया। जगतकी सारी सफेद वस्तुयें उस उज्ज्वलतामें एकमेक होकर अदृश्य सी बन गई।

परमपुरुष भगवान् विष्णु अपने सफेद क्षीरसमुद्र ढूढ़ते फिरते हैं। भोले बाबा का तो अपना शुभ्रहिमाच्छादित कैलाश ही खो गया। ढूढ़ने पर मिलता ही नहीं। देवेन्द्रका ऐरावत हाथी गुम हो गया। राहू को अपने ग्रास शुभ्रचन्द्रमा का पता नहीं लग रहा है। लोकपितामह ब्रह्मा अपना वाहन सफेद हंस खोजते-खोजते थक गये। क्या करें ?

महाराज श्रीमज्जगति यशसा ते धवलिते
पयःपारावारं परमपुरुषस्ते मृगयते।
कपर्दी कैलाशं कुलिशभृद्भौमं करिवरं
कलानाथं राहुः कमलभवनः हंसमधुना॥

एक ने कहा—बन्दी भाई, इतनी गप्प नहीं हाँकते ! विदूषक ने कहा- वंदी यार । खूब कहा ! बलिहारी !! कैसा कहकहा मच गया !!!

तखत चढ़ी नृत्यत सुभग, बारमुखी बहुसंग ।

भांड़ अमित आकल्प रचि, करत सुनाना रंग ॥५८॥

शब्दार्थ :—तखत=नृत्य मंच । सुभग=सुन्दरी । बार-मुखी (सं० बारमुख्या =प्रधान वेश्या । अमित=अनगणित । आकल्प=बनावटी वेष, स्वांग । रंग=प्रहसन । भाँड=हसौड़ा, मसखड़ा ।

भावार्थ :—श्रीजानकीजीवन जब सभाभवनमें विराजमान होते हैं । उस समय नृत्यमञ्च पर खड़ी होकर, अनेकों प्रमुख रूपवती बारांगनाएँ एकसाथ सांस्कृतिक नृत्यकला दिखाती हैं । अनेकों विदूषक अनेकों प्रकार के स्वांग सजकर अनेकों प्रकार के प्रहसन नाट्य करते हैं । यह राजसभाके मनोविनोद की रीति है ।

सम वय सम बाहन चढ़े, करि करि सम शृंगार ।

संग सखा सोभित अमित, छबिनिधि राजकुमार ॥५९॥

शब्दार्थः—सम=बराबरी । वय=उम्र । बाहन=सवारी अमित=असंख्य । छविनिधि=छरे छबीले छयल सब, सूर सुजान । राजकुमार=रघुवंश में उत्पन्न सभी बालक राजकुमार कहाते हैं । रघुवंश राजवंश हैं, राजपरिकर हैं ।

भावार्थ :—श्रीरघुलालजीसे अधिक अवस्था वाले सुहृद सखा कहाते हैं। आखेट के लिए सवारी निकलती है, तो ये हाथी पर चढ़कर आगे-आगे चलते हैं। इनसे छोटी अवस्था वाला नर्म सखा, बहुत कम उम्र वाले मधुर सखा कहाते हैं। नर्म सखा रथपर चढ़कर पीछे-पीछे चलते हैं।

प्रस्तुत दोहेमें समान अवस्था वाले प्रिय सखा की चर्चा है। ये सभी साथ-साथ चलते हैं।

को साहिब सेवकहि निवाजी।

आपु समान साज सब साजी॥

इस नीति से श्रीरघुलालजी ने इन समान वयक्रम वाले प्रिय सखाओं के भूषण वसन आदि शृंगार सामग्री अपने ही समान दे रखी है। अपने ही समान श्यामकर्ण घोड़े सबोंको दिया है। अतः एक अवस्था, एकही समान शृंगार करके, एक ही समान घोड़े पर चढ़े सभी प्रकार से समता सज रहे हैं। सभी छविनिधान राजकुमार असंख्य सखा साथ-साथ चलते हैं।

प्रिया सखा रघुनन्द चन्द के वय बल वेष सँवारे।

भूषन वसन राम सम सोहत वदन मदन मद गारे॥

इनमें प्रमुखों के नाम हैं—सर्वश्री प्रतापी, शुकमणि, सुशिरा, दीर्घबाहु, चारुचन्द, हरिदश्व, शीलमणि, अजित, सुमुख, शुकनास, वीरकर्मा, अतिविक्रमी, मोहनांक, वीरमर्द, सुकण्ठ, जयसेन, आदि।

— श्रीप्रेमसुधारत्नाकर से उद्धृत।

वीरसिंह आदिक के सुवन प्रसिद्ध जेते-
औरहु वरन कुल भूषन जो भये हैं।
राजसुत नेह गहे सर्वकाल संग रहे-
खेटकादि लीला मधि लाल जहाँ गये हैं॥

—श्रीरसिक प्र० भक्तमाल क० ३०।

सौज अनेकन कर धरें, कोटिन किंकर संग।
वयस मधुर सेवा चतुर, छवि लखि मोह अनंग॥६०॥

शब्दार्थः—मधुर वयस=छः सात सालके छोटे बालक। अनंग=कामदेव। किंकर=सेवक, दास।

भूमिका—प्रस्तुत दोहे में दासोंकी चर्चा है। यद्यपि चार प्रकारके श्रीरामदास हैं—

१-अधिकृत,अधिकार प्राप्त श्रीब्रह्मादि त्रिदेव, देवेन्द्र आदि

२- आश्रित, श्रीविभीषण, श्रीसुग्रीव, श्रीअंगद, कोल-भील आदि। ज्ञानिचर आश्रितमें श्रीअगस्त्य, सुतीक्ष्ण, सरभंग, गौतम आदि।

३- पार्षद-भ्रातत्रय श्रीहनुमन्तलालजी, धर्मपाल, दिवाकर आदि।

४- अनुग—

सर्वकाल रघुलाल की, परिचर्य्या मे लीन।
संग संग सबकाल रहि,तिनहि अनुग करि चीन॥

श्रीजगदेव, सुदेव, सुलोचन, यज्ञसेन, रणधीर, देवदत्त, वसुमान, केलिनिधि, चन्द्रकान्त आदि इनके नाम हैं। इस दोहे में इन्हीं अनुगों की चर्चा है।

भावार्थ :—झाड़ी, पानदान, पीकदान आदि अनेकों सेवा-सामग्री अपने-अपने हाथोंमें लिये, असंख्य किंकर संग में सेवा तत्पर रहते हैं। ये सब कामाधिक सुन्दर हैं। यद्यपि अल्पवयस्क बालक हैं, परन्तु सेवा कार्यमें बड़े प्रवीण हैं। मधुर अवस्थाके नाते इन्हें महलकी सेवा भी प्राप्त है।

प्रीति पयोनिधि मीन पगे पल एकहु होत कदापि न न्यारे।
भीतर बाहर में अधिकार सियावर के सब प्रान पियारे॥
राम स्वरूप अगाध अनूप महामुद कोष पयोधि निहारे।
वासना और नहीं जिनके उर ऐसे सुकिंकर कोटि अपारे॥

या शोभा रघुनन्द की, अनत न कहूँ समाय।
यातैं रसिकन के हिये, रघुवर ही सरसाय। ६१॥

शब्दार्थ:—अनत=दूसरी जगह, अन्य भगवत स्वरूपमें

भावार्थ :—ऊपर वर्णित राजमाधुरी विशिष्ट शोभा एकमात्र श्रीरघुवंश भूषणजू में ही है। दूसरे सगुण ब्रह्ममें नहीं मिलने की। यही कारण है कि श्रीअयोध्या कनकभवनविहारी-लालजूके मधुर उपासक रसिकोंके हृदयमें एकमात्र श्रीजानकी-रमणजू ही एकाधिकार करके विराजे हैं। उनके अतिरिक्त दूसरे नहीं रुचते।

❀ श्रीसियावरजू का रूपोत्कर्ष ❀

कृष्णचन्द्र ब्रजयोषिता, मोही गाय सुतान ।
नहिं कछु रूप विशेषता, मृगिहु मोह सुनि गान ॥६२॥

शब्दार्थ :—योषिता (योषति पुमांसम्)=युवती सुन्दरी पुरुषों को मोहने वाली ।

भावार्थ :—लीलापुरुषोत्तम मदनमोहन श्रीकृष्णचन्द्रजूने ब्रजसुन्दरियों को मोहित किया अवश्य, किन्तु यह मोहन प्रभाव उनके सौन्दर्य माधुय का नहीं था । यह तो उनके बंशी-विनि-सृत गान सौष्टवका प्रभाव था ।

श्रीमद्भागवत महापुराण दशमस्कन्ध अध्याय २६, श्लोक ३,४ में पढ़ें ।

······जगौ कलं वामदशां मनोहरम् ।
निशम्य गीतं तदनङ्ग वर्धनं
ब्रजस्त्रियः कृष्ण गृहीत मनसाः ।
आजग्मु रन्योन्यमलक्षितोद्यमाः
स यत्र कान्तो जवलोल कुण्डलाः ॥

अर्थात् शरदपूर्णिमाकी मनोरम रात्रिमें भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी बाँसुरीमें सुलोचनी ब्रज सुन्दरियों के मनको हरने वाला गान किया । उस कामरस बढ़ाने वाले गान को सुनकर ब्रजांगनाएँ दूरसे ही सुनकर जान गईं कि यह गान श्रीकृष्ण

का है। अतः गोपियोंका हृदय इनके प्रति आकृष्ट हो गया। सबकी सब वहाँ श्रीकृष्णके समीप आ जुटीं। यहाँ आनेका यत्न सबका भिन्न-२ था। एक दूसरे के यत्नको नहीं जान सकी। दौड़ती हुई आई थीं, अतः सबों के कर्णभूषण डोल रहे थे।

संगीत का मोहक और आकर्षक प्रभाव प्रसिद्ध है। कोई कुरूप व्यक्ति भी सुन्दर वेणु बजाता है तो पशुजाति की मृगी भी मोहित होकर उस वेणुवादक के पास आ जाती है। संगीत प्रिय मानवी क्यों न मोहित हो ? अब आपही बताइये कि उपर्युक्त मोहक प्रभाव था गान का कि रूप का ?

और सुनिये—

तद्व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम्।
काश्चित् परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्व वर्णयन्॥

— वही- १०।२१।३

अर्थात् उन ब्रज-सुन्दरियों ने श्रीकृष्णका कामोत्पादक वेणु गीत सुना। उनमें से कोई कोई श्रीकृष्णके परोक्षमें अपनी सखी से उनकी चर्चा करने लगी। (गान सुनकर न कि रूप देखकर।)

मिथिलापुरकी तियनकौं, रघुवर मोहि सुभाय।
केवल रूप विशेषता, नहि कछु युक्ति दिखाय॥६३॥

शब्दार्थ :—रघुवर=विश्वकोषमें रघु शब्दका अर्थ जीव कहा है, रघुवर जीवमात्र के अभिनव दूलह हैं।

रूप की परिभाषा श्रीभगवद्गुण दर्पण में लिखा है।

चुम्बकायःकण न्याये दूराद्दाकर्षको बलात्।

चक्षुषां स गुणो रूपं शानः स्माग्शरावलेः ॥

अर्थात् चुम्बक जैसे लौहकणोंको दूरहीसे बरबश खींच कर अपनेमें लिपका लेता है, उसी प्रकार दूरवर्ती नयनोंको भी आकर्षितकर अपनेमें लगा लेवे, वही रूप कहाता है। दूसरा प्रभाव रूपका है, काम वाणका प्रहार करना। मानो रूप कामवाणों को पिजाकर तेज करनेवाला शान होवे।

श्रीमैथिलसुन्दरियों को मोहित करना टेढ़ी खीर थी। इनसे अधिक अथवा समान त्रिलोकमें कोई सुन्दरी थी ही नहीं। अपनेसे कम रूपको देखकर मोहित नहीं हुआ जाता। देवलोक के रूप इनके आगे कैसे कांतिहीन था, जैसे पूर्णचन्द्रके सामने तारागण।

नगर नारिनर रूप निधाना।

सुघर 'सुधरम' सुसील सुजाना ॥ १।३१४।६७

तिन्हहि देखि सब सुर सुरनारी।

भये नखत जनु विधु उजिआरी ॥

दूसरा कारण और था, श्रीमिथिलेशजी ब्रह्मज्ञानियोंके भी देशिक थे। "सहज विराग रूप मन मोरा" कहने वाले की प्रजा भी 'सुधरम' थी। इन्द्रीजीत सतियोंको मोहना हँसी खेल नहीं था। इनको भी मोह लेनेसे राघवरूप चराचर मोहन

विश्वमोहनसे भी अधिक गौरवान्वित पदपर प्रतिष्ठित हुआ। स्मरण रहे कि श्रीकृष्णकी भांति इनने मोहन प्रयोग केलिये न तो गानकला का, न अन्य युक्तिका सहारा लिया था। सोरह आना निसोत प्रभाव था रूपका।

यद्यपि मोहीं योषिता, कृष्णचन्द्र छवि देखि।
तदपि न अनहोनी कछु, होनी ही जिय लेखि ॥६४॥

नारि मोह लखि पुरुष वर, पुरुष मोह लखि नारि।
तहाँ न अनहोनी कछू, कवि बुध कहत विचारि ॥६५॥

शब्दार्थ :—अनहोनी = न होने वाली, अलौकिक। होनी = लोकरीति।

भावार्थ :—श्रीकृष्णचन्द्रमाजू भी मोहन, मनमोहन, मदनमोहन कहाते हैं। हम मान लेते हैं कि इनने ब्रजबनिताओं को अपनी सुछविके प्रभावसेही मोह लिया था तो क्या हुआ? पुरुषको देखकर स्त्रीका मोहित होना कोई अलौकिक बात तो है नहीं, यह लोकरीति सर्वत्र देखी जाती हैं। स्त्री देखकर पुरुष मोहित होता है, पुरुषको देखकर स्त्री। कवि बुद्धिमान पुरुषोंकी दृष्टिमें स्त्रीमात्रका मोहनेसे रूपमें कोई विशेष विलक्षणता नही आती। सहज स्वाभाविकता है। साधारण लौकिक रूपमें भी यह प्रभाव है। ब्रह्मरूपमें लोकोत्तर चमत्कार अपेक्षित है। सो आप श्रीराममें देखिये।

होनी होनी होइ तहँ, अद्भुतता नहि जान।
अनहोनी तहँ होइ कछु, अद्भुत क्रिया बखान ॥६६॥

अनहोनी सोइ जानिये, पुरुष रूपनिधि देखि।
मोहय पुरुष वधुत्व करि, अद्भुतता सोइ लेखि।६७॥

सो गति दंडक विपिन मुनि, भइ रघुवरहि निहारि।
याते अद्भुत रूपश्री, रामहिको निरधारि ॥६८॥

भावार्थ :—जो बात लोकमें सहज सम्भव है, उतनाही ब्रह्मभी करके दिखादे, तो इसमें ब्रह्मोचित विलक्षणता क्या हुई? ब्रह्म अघटित घटना करके दिखादे, तो समझें कि यह ब्रह्मके अनुरूप अद्भुत कर्म हुआ।

रूपनिधान पुरुषोत्तमको देखकर प्राकृत मण्डलका पुरुष रूपधारी व्यक्ति मोहित हो जाय और चाहे कि मैं इनकी पत्नी बनकर इनका अंग-संग सुख प्राप्त करूँ, तो यह एक अद्भुत बात रूप चमत्कार की अवश्य माननी पड़ेगी।

श्रीराघवके तपस्वी वेशमें भूषण वसनहीन रूपको भी देखकर दण्डकारण्यके इन्द्रियजीत बीतराग परमहंसोंके मनमें उपर्युक्त बात आई। हम तपबलसे स्त्री रूपधारण करें। श्रीराघव के रमणीय रूपसे रमण करें।

पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्य वासिनः।
दृष्ट्वा रामं हरिस्तत्र भोक्तुमैच्छत सुविग्रहम्॥

अब तो आपको निश्चय हुआ न कि अद्भुता एकमात्र श्रीरामरूपमें ही है।

अद्भुत रूप निहारिकै, सब जिय होत सुमोह।

विष तन ध्यावत पूतना, नेक न लयाई छोह ॥६८॥

शब्दार्थ :—यहाँ मोह तथा छोह एकही अर्थमें आये हैं। अर्थ है दयापूर्ण स्नेह।

भावार्थ :—अद्भुत रूपमें विशेषता एक यह भी है कि देखने वालोंमें से प्रत्येकके हृदयमें अद्भुत रूपके प्रति दयापूर्ण स्नेह हो जाता है। भयंकरसे भयंकर प्राणी भी उसका अनिष्ट नहीं करते।

जिनहि निरखि मग सापिनि बीछी।

तजहि विषम विष तामस तीछी॥

को अस जीव जन्तु जग माहीं।

जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाहीं॥

अच्छा, आपके श्रीकृष्ण रूपमें भी वही स्नेहोत्पादक प्रभाव है, तो पूतना के लिये वह प्रभाव कहाँ गया? माँ बनकर गई थी स्तनपान कराने। विषलिप्त स्तन पिलानेके समय उसने रूप-दर्शन वाला छोह दर्शाया नहीं। इसीसे तो कहते हैं कि श्रीरामरूप वाली अद्भुता श्रीकृष्णमें नहीं है। आप कहेंगे कि पूतना राक्षसी थी, राक्षसीमें कहाँ मोह-छोह? तो सूपनखा भी तो राक्षसी थी। श्रीरामरूपके प्रति उसे कैसे ममत्वपूर्ण स्नेह हुआ?

रिपु भगिनी पुनि राक्षसी, जाकर मनुज अहार ।
मगन भई लखि राम छबि, करन चही भरतार ॥७०॥

भावार्थ :—रावण श्रीरघुनन्दनजू का वैरी है। ऐश्वर्य दृष्टिसे रावणवधके निमित्तही आपने मानव लोकमें अवतार लिया है। माधुर्य दृष्टिसे भी श्रीभुशुण्डि रामायणके अनुसार रावण आपके जन्मके पश्चात्‌हीसे आपके वधार्थ कपटी राक्षसों को भेजता रहता था, अतः प्राचीन वैरी है वह। शूर्पणखा उसीकी बहन है। उसको भी आपके प्रति वैरही होना चाहिये था। दूसरी बात यह है वह नर मांसभक्षी थी। मानवकेप्रति दया कैसी? किन्तु आपकी सुछवि-दर्शन करतेही मोहित हो गई, और हो गई इतनी अनुरागिनी कि आपको अपना पतिही बनाने की ठानी। प्रस्ताव रखा कि मुझसे विवाह करलो। मेरी तुम्हारी जोड़ी खूब छनेगी। विधाताका ही विधान आ जुड़ा है।

तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी।
यह संयोग विधि रचा बिचारी ॥

नाक कान काटे जानेपर भी, सूर्पणखाके हृदयमें उनका साँवला सलोना रूप प्रेमास्पद बनकर, घर बनाये बसा है। उनकी बीरता पर शूर्पणखा कायल है। रावणके पास सूचना देती हुई कहती है—

"शोभाधाम राम अस नामा। परमधीर धन्वी गुननाना ॥"

कहा—उस प्राणप्यारेका कोई कसूर है नहीं। फसादी है उसका छोटा भाई। "तासु अनुज काटे श्रुति नासा।"

खरदूषन आदिक सकल, मोहें राम निहारि।
लड़े सो निज इच्छा नहीं, निज विरत्व विचारि ।।७१।।

भावार्थ :—खर, दूषण, त्रिशिरा तथा उनकी चौदह हजार संख्यक राक्षसी सेना, श्रीरघुनाथजीकी रमणीय रूपराशि को देखकर मोहित हो गये । उनके प्रति इतनी प्रीति बढ़ी कि उनके विरुद्ध बाणप्रहार करते नहीं बना । सोचने लगे कि बहन की नाक कान काटे, तो काटने दो । इन मनमोहनको मारेंगे नहीं । श्रीरामचरितमानस ३।१६। का यह मार्मिक प्रसंग पढ़ने में बड़ा ही सुख होता है ।

प्रभु विलोकि सर सकहि न डारी।
थकित भई रजनीचर धारी ॥
नाग असुर सुर नर मुनि जेते ।
देखे जिते हते हम तेते ॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई ।
देखी नहिं असि सुन्दरताई ॥
जद्यपि भगिनी किन्ह कुरूपा ।
बध लायक नहिं पुरुष अनूपा ॥

प्रश्न यह होता है कि इनसे युद्ध किया ही क्यों ?

उत्तर यह है कि शूरवीर रणमें परपक्ष की ललकार नहीं सह सकते ।

योद्धा मुकुटमणि श्रीरघुवीर की ललकार —

जौं न होइ बल घर फिरि जाहू ।

रिपु पर कृपा परम कदराई ॥

"सुनि खर दूषन उर अति दहेऊ ।"

अतः लड़ने-भिड़ने की इच्छा नहीं होनेपर भी शौर्या-वेशमें आकर भिड़ गये ।

ऐसे रघुबर रूपनिधि, सो मोहे सिय देखि ।

पटतरता कहँ पाइये, अति अद्भुत छवि लेखि ॥६२॥

भावार्थः- चराचर विमोहन, पुरुषरमणीकरण श्रीअवधि-सुन्दर जब रिपुमनमोहन बन गये, तब तो आपकी रमणीयता में चार चाँद लग गये । परन्तु श्रीमैथिलीजूका सौन्दर्य तो आपसे भी कहीं अधिक सुन्दर है । श्रीवरवा रामायणमें श्रीगो-स्वामिपाद की उक्ति है—'गरब करहु रघुनन्दन जनि मन माँह ।

देखहु आपनि मूरति सिय की छाँह ॥'

श्रीजनकपुरके गिरिजाबागमें सर्वप्रथम आपको जब श्रीसियशोभाके दर्शन हुये तब तो—"सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ।" "भए विलोचन चारु अचंचल ॥"

बिचारना चाहिये कि श्रीरामरूप अद्भुत है, तो श्रीसिया-रूप अति अद्भुत है । इनकी समता खोजना व्यर्थ है । खोजिये, मिलेगी नहीं ।

सुन्दरता कहँ सुन्दर करई ।

छवि गृह दीपसिखा जनु बरई ॥

सब उपमा कवि रहे जुठारी ।

केहि पटतरौं विदेह कुमारी ॥

❀ श्रीराम लीला परत्व ❀

—ः सोरठा ः—

लीला अमित अपार, रासादिक सियराम की ।

यही प्रमाण उदार, एक मुनिहि सतकोटि रचि ॥७३॥

पुनि मुनि और अपार, विधि संकर सेषादि सब ।

निज निज मति अनुसार, गावत नित नव राम यस ॥७४॥

भावार्थ :—प्रस्तुत दोहेमें दिव्यदम्पति श्रीसीतारामजी की ललित लीलाओंमें 'रासादिक' शब्दसे श्रीरासलीलाको प्रधान कहकर, अन्य लीलाओंको अपेक्षाकृत अप्रधान सिद्ध किया ।

श्रीरसिकप्रकाश भक्तमालमें बाललीला, व्याहलीला, आखेटलीला, राजलीला को सीमाबद्ध सुखद कहकर श्रीरास-लीलाको (अमित) असीम सुखद बताया गया है ।

कवित्त ४८ पढ़िये :—

यद्यपि अनेक मम भक्त सुखदानी

मात पिता सुत मित्र दास भावमें प्रवीन हैं ।

तहाँ तहाँ बाल ब्याह आखेटक रनरोज

लीला रस भाव सुखसागर के मीन है।

उनहीं के भावमें मगन ह्वै के राजै नित

मित सुख योग सबहुन हमें दीन है॥

अमित प्रियाजू अतिहित रासलीला सुख

ताके बिन मेरो मन रहत मलीन है॥

केबल महर्षि वाल्मीकिनेही श्रीअबधविहारिणी बिहारी-लालकी असंख्य लीलाओंका वर्णन किया है।

वाल्मीकिना च यत्प्रोक्तं रामोपाख्यानमुत्तमम्।

ब्रह्मणा चोदितं तच्च शतकोटि प्रविस्तरम॥

— मत्स्यपुराण।

श्रीरामचरित की अनन्तता इतनेहीसे प्रमाणित है। अन्यान्य मुनियोंने श्रीब्रह्माजी, भगवान शंकरजी तथा शेष, सरस्वती आदि वक्ताओंने वर्णन किया, सो तो अलग है। है किसी अन्य अवतारके इतने अनन्त अपार चरित? तभी तो—

राम अनन्त अनन्त गुन, अमित कथा विस्तार।

सुनि आश्चर्य न मानहीं, जिनके विमल विचार॥

निज निज मत मुनि हरिगुन गावहि।

निगम सेष सिव पार न पावहि॥

❀ श्रीराम-धाम परत्व ❀

अवधि सुपरतम धाम, नित्य सच्चिदानन्दमय ।
जहाँ रमत सियराम, रासादिक लीला विविध ।।७५।।

भावार्थ :—यहाँ अवधि अयोध्या तथा सीमा दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है । श्रीअयोध्या सभी भगवद्धामोंसे सर्वोपरि है । उनसे ऊपर कोई धाम है नहीं । श्रीसदाशिवसंहितामें शेष वेद सम्वाद रूपमें ऐसा कहा गया है ।

तदूर्ध्वं तु परमंकान्तं महावैकुण्ठ संज्ञकम् ।
वासुदेवादयस्तत्र विहरन्ति स्वमायया ।।
तदूर्ध्वं स्वयं भाति गोलोकः प्रकृतेपरः ।
वाङमनो गोचरातीतं ज्योतिरूपः सनातनः ।।
तस्य मध्ये पुरं दिव्यं साकेतमिति संज्ञकम् ।
योषिद्रत्न मणिस्तम्भ प्रमदा गण सेवितम् ।।

अर्थात् अन्यान्य भगवद्धामोंसे ऊपर महावैकुण्ठ नामक श्रीवासुदेवादि चतुर्व्यूहं का धाम है। अपनी-अपनी शक्तियोंके सहित वहाँ बिहार करते हैं । उससे भी ऊपर प्रकृतिमंडलसे परे ज्योतिर्मय गोलोक है, जो मन, बुद्धिसे भी अगोचर है, सनातन है । गोलोक की राजधानी केन्द्रमें विराजमान श्रीसाकेत नामक धाम है । रमणीरत्नों, मणिस्तम्भोंसे परिसेवित है ।

इस सच्चिदानन्दमयधाममें श्रीसीतारामजी नानाप्रकार की रासादि मधुर लीलाएँ करते हुये बिहार करते हैं ।

श्रीवशिष्टसंहितामें रघुकुलगुरु श्रीवशिष्टजीने अपने शिष्य श्रीभारद्वाजजीसे कहा है कि श्रीअयोध्यानगरी नित्या है अर्थात् अविनाशिनी है, सच्चिदानन्द-स्वरूपा हैं। इन्हींके अंशांशसे वैकुण्ठ, गोलोकादि उत्पन्न होकर अपनी-अपनी जगह प्रतिष्ठित हैं।

यहाँ श्रीसरयू भी नित्या हैं। जलधाराके व्याजसे प्रेम-प्रवाह वहन करती हैं। इन्हीं श्रीसरयूके अंशसे विरजादि दिव्य सरिताएँ प्रगट हुई हैं।

अयोध्या नगरी नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी।
यस्यांशांशेन वैकुण्ठा गोलोकादि प्रतिष्ठिताः॥
यत्र श्रीसरयू नित्या प्रेमवारि प्रवाहिनी।
यस्यांशांशेन संभूता विरजादि सरिद्वराः॥

सरितवरा जहँ सोह, श्रीसरयू पावनि परम्।
परानन्द संदोह, राजति जनु जल रूप धरि॥७६॥

भावार्थ :—उपर्युक्त वर्णित श्रीअवधधाममें सप्तपावनी नदी-शिरोमणि श्रीसरयूजी सुशोभित हो रही हैं। उनकी धारा के दर्शनोंसे अत्यधिक परमानन्दका अनुभव हृदयमें होता है। मालूम पड़ता है मानो परमानन्दका पुञ्जही जलके रूपमें साकार होकर शोभा सज रहा है।

राजत नील सुपद्म, सांजन सरजू नैन सोइ।
झाँइ परत मनिसद्म, सो जनु वहु भूषन सजे॥७७॥

शब्दार्थ :—पद्म=कमल। सांजन=अंजन, काजर सहित। सद्म=महल। झाँइ=प्रतिविम्ब, परिछाही।

भावार्थ :—श्रीसरयूधारामें नीलकमल खिले हैं। वही मानो श्रीसरयूसुन्दरीके कजरारे नयन हैं। श्रीसरयू-प्रवाहमें किनारे स्थित मणिमय महलोंके प्रतिविम्बही मानो श्रीसरयू-रमणीके विविध अंग भूषण हैं।

लसत सिवार सुवार, सम्बर अम्बर सोहहीं।
अद्भुत रूप उदार, सरयू सरिता स्वामिनी ॥७८॥

शब्दार्थ :—सिवार=पानीमें लच्छोंकी तरह फैलनेवाला एक तृण। सुवार=सुन्दर केश। सम्बर (स+अम्बर) =नीले आकाश का प्रतिविम्ब। अम्बर=वस्त्र। उदार=श्रेष्ट।

भावार्थ :—श्रीसरयूजलमें फैले हुये सिवारके लच्छेही श्रीसरयू रमणीके माथेके घुघुराले केश हैं। जलमें प्रतिविम्बित नीले आकाशही श्रीसरयूवधूटीके अंग वस्त्र हैं।

इस प्रकार सभी पावनी नदियोंकी स्वामिनी श्रीसरयू-महारानीका लोक-विलक्षण रूप अतिश्रेष्ट है।

भागीरथी, भानुकन्या, सिन्धु, सोन, महानद,
फलगो, सुगंडकी, औ गोमती महानी है।
कावेरीहूँ, कृष्णावेना, ताम्रवर्णी, तुङ्गभद्रा,
नर्मदा, गोदावरीहूँ, भरी पुण्य पानी है ॥

इन्हैं आदि नदी पंचशत 'रसरंगमणी'
वन्दैं पद सागरो बसिष्टसुता जानी हैं।
सोई नात मानी पूजै राम सनमानी, ऐसी
सरिताधिरानी श्रीसरयू महरानी हैं ॥

द्रुम किनार सोइ छत्र, चँवर तरंग सुभ्राजहीं।
घोष दुन्दुभी अत्र, निसदिन अद्भुत बाजहीं ॥७९॥
दुहूँ कूल मणिघट्ट, अट्ट सुउच्च विराजहीं।
निज निज तट्ट सुठट्ट, नरनारिन सोइ भृत्य बहु ॥८०॥

शब्दार्थ:—द्रुमकिनार=श्रीसरयूतटके वृक्ष। घोष=जलधाराकी कलकल ध्वनि। अत्र=यहाँ। कूल=तट। अट्ट=अट्टालिका, कोठा। तट्ट=तट, किनारे। सुटट्ट=भीड़भाड़। भृत्य=सेवक, दास।

भावार्थ:—श्रीसरयू महारानीके साजसमाजका सावयव रूपक कहते हैं। श्रीसरयू तटपर दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे विशाल वृक्षोंकी प्रसरित शाखाएँ मानो श्रीसरयू महरानीके शिरपर छत्र फिरा रही हैं। धारामें तरंगें उठती हैं, वही मानो चँवर डुराया जा रहा है। यहाँ धाराकी प्रवाहध्वनि ही मानो दिनरात विलक्षण रूपसे बजने वाली इनकी विजयदुन्दुभी है। दोनों ओर के तटोंपर मणिमय घाट बँधे हैं, यही मानो श्रीसरयू महरानी के निवास वाली ऊँची अट्टालिका है। घाट-घाटपर स्नानार्थी,

दर्शनार्थी, जलार्थी नरनारियोंकी भीड़ जुटी है, वही मानो श्रीसरयू महारानी के दासदासी हैं।

गंगा जमुना आदि, नदी सकल जग पावनी।

और अमित प्रागादि, सबके इष्ट वसिष्टजा।८१॥

शब्दार्थ :—प्रागादि=प्रयागराज आदि। वसिष्टजा= श्रीवशिष्ट पुत्री सरयूजी।

भावार्थ :—श्रीगंगा, श्रीयमुना आदि समस्त जगतको पालन करने वाली नदियाँ हैं। तथा श्रीप्रयाग आदि असंख्य तीर्थ स्थान हैं। इनसबोंके इष्ट श्रीसरयूजी हैं, क्योंकि श्रीभङ्गि देवाचार्यजी कहते हैं कि यात्रियोंके पापभार वहन करने वाले सभी तीर्थ श्रीसरयूधारामें स्नानकर पावन बनते हैं। अतः आपका मंगल हो।

तीर्थानां यज्जले स्नानात् पापान्मुक्तिर्भवेदिह।

भवतात् सरयुदेव्यै तस्यै च मङ्गलं शुभम्॥

गङ्गा ज्ञानमयी गिरा, गिरिसुता पद्मालया भानुजा

कावेरी कलिपापतापशमनी शुद्धा तथा नर्मदा।

सेवन्ते तव पाद पङ्कजरजो ज्ञात्वा महिम्नः परं

त्वत्पादाम्बुजसेवया जगदघध्वंशे समर्थास्तुताः॥

— अनन्त श्रीस्वामी युगलानन्यशरणजी महाराज विरचित सरयू अष्टक से।

गिरा=सरस्वती नदी। गिरिसुता=कोई भी पहाड़ी नदी। पद्मालया=कमला। भानुजा=यमुना। (जगत्+अघ) जगदघ=संसारमें होने वाले पाप। महिम्नः परं=परम महिमा ज्ञात्वा=जानकर।

❁ श्रीरत्नाचल अर्थात् मणिपर्वत ❁

रत्नसिलोच्चय राज, जहँ अति अद्भुत तेज निधि।
बहु द्रुम कुंज बिराज, बोलत खग करि मधुर स्वर ॥८२॥

शब्दार्थ :—सिलोच्चय (शिलोच्चय)=पर्वत। रत्न-सिलोच्चय=रत्नाचल, मणिपर्वत। द्रुमकुंज=वृक्षोंकेही बने कुंज। तेजनिधि=प्रकाशपुंज।

भावार्थ :—श्रीकनकभवनसे दक्षिण ओर श्रीअशोकवन के अन्तर्गत रत्नाचल है (उत्तरमें मुक्ताचल, पूर्वमें शृङ्गाराचल तथा पश्चिम लीलाचल नामक पर्वत हैं) रंगबिरंगी मणियोंसे जटित होनेके कारण यह बिलक्षण प्रकाशोंके निधान हैं।

रत्नाचलकी तलहट्टीमें बहुतसे कुंज बने हैं। वृक्षोंकी शाखाओंको मोड़कर, कुंजकी दीवार, छत, खम्भे, द्वार, खिड़की आदि बने हैं। ऐसे कुँज द्रुमकुंज कहाते हैं। पर्वतोंपर तथा आसपासमें रागरागिनियोंके प्रतिरूप पक्षीगण सांस्कृतिक रीति से मधुर कलरव करते हुये गानकर रहे हैं।

❁ सोम स्रवण वट ❁

मनिगिरिके आसन्न, सोमस्रवण बट सुभग अति।
अचला जटित रतन्न, तहाँ हिंडोला कुंज बहु ॥८३॥

शब्दार्थ :—मनिगिरि=मणिपर्वत । आसन्न=समीप, सटे हुये । सोम=चन्द्रमा । स्रवण=चुआने वाला । बट=बरगद का पेड़ । सुभग=सुन्दर । अचला=भूमि ।

भावार्थ :—श्रीमणिपर्वतके समीपही सोमस्रवण नामक वटवृक्ष है । इसके पत्ते-पत्ते में चन्द्रमाका प्रकाश भरा है तथा उनसे सोमरस टपकता रहता है। इसीसे गुणपरक इनका नाम है सोमस्रवण बट । यह बटवृक्ष अत्यन्त मनोरम (सुभग) तथा भोगैश्वर्य सम्पन्न है । बटके नीचेकी भूमि विविध रत्नोंसे जटित है, सर्थात् रंग-रंगके वेलबूटे आदि चित्राम बने हैं । इनके समीप बहुतसे हिंडोल कुंज हैं ।

ऐसे सोमस्रवणबट तो है श्रीअशोकवनकी केन्द्रीय रासस्थली, परन्तु रास की अवान्तर लीलामें जब झूलन लीलाकी अभिलाषा होती है, तो अनेक रूपोंसे प्रधानतः श्रीप्रियाजूके साथ-साथ दक्षिण नायक बनकर अपर-नायिकाओंके साथ झूला झूलते हैं । वहुतसे हिंडोलकुंजोंका यही अभिप्राय है ।

❀ श्रीअवध नगर का बाहरी परकोटा ❀

दुर्गम दुर्ग विराज, उच्च धवलता तासु अति ।
जनु चहुँ ओर सुभ्राज, सियरघुवर को विमल जस ।।८४।।

शब्दार्थः—दुर्गम=जिसके भीतर प्रवेश करना कठिन है। दुर्ग=किला, गढ़ । धवलता=सफेदी । सुभ्राज=सुशोभित ।

भावार्थ :—श्रीअयोध्यानगरके बाहर चारोओर स्फटिक मणि विरचित उच्च तथा समुज्ज्वल परकोटे बने हैं। इन परकोटे

के भीतर कुबिचारियोंका प्रवेश सम्भव नहीं। 'दुर्गगम्भीर परिखां दुर्गामन्यैर्दुरासदाम्।' श्रीवाल्मी० १।५।१६ ॥

इन परकोटोंके शुभ्रप्रकाश बहुत दूर तक फैले हैं, मानो श्रीमैथिलीरघुनन्दनजूका निर्मल सुयशही परकोटप्रकाशके व्याज से चहुँओर प्रसरित हो रहा हो।

दिव्य फटिकमय कोट, ओट ताकी जो रहहीं।
काल मृत्यु भय रहित, पाप परिताप न लहहीं॥
— श्रीबड़ी ध्यानमञ्जरी।

चहुँ गोपुर चहुँ मुक्ति, सेवत निज परिवार युत।
कहौं न कछु निज युक्ति, महिमा अवध सुविदित श्रुति॥८५

शब्दार्थ :—गोपुर=नगरका मुख्य द्वार। चहुँमुक्ति= सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य और सायुज्य नामक चारो मुक्तियाँ परिवार=कर्म, योग, ज्ञान, उपासना, प्रपत्ति आदि। युक्ति= मनगढ़न्त बात। श्रुति=वेद।

भावार्थ:—श्रीअवधनगरमें बाहरसे प्रवेश करनेके लिये पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तरसे एकएक चार मुख्य प्रवेश सिंहदरवाजे हैं। प्रत्येक द्वार पर चारोमेंसे एकएक मुक्ति अपने परिवार सहित द्वार-रक्षा रूपी सेवामें तत्पर है। मुक्तात्माही भीतर प्रवेशकर सकती हैं। पूज्य ग्रन्थकारका कहना है कि मैं कुछ कपोलकल्पित बात नहीं कहता। श्रीअयोध्याकी महिमा वेदोंमें भी प्रसिद्ध है।

यहाँ स्थानाभावसे वेदोंमें उपलब्ध अनेक प्रमाण न दे-कर वेदार्थभूत भार्गवपुराणसे भगवान् नारायणके श्रीमुखवचन-मात्र उद्धृत किया जाता है।

त्रिपाद्विभूतौ वैकुण्ठे विरजायाः परे तटे।
या देवानां पूरयोध्या ह्यमृतेना वृतापुरी॥

अर्थात् विरजापार नित्य भगवद्धाम त्रिपादविभूति अन्त-र्गत वैकुण्ठ स्थानोंमें (देवानां) मुक्तजीवोंका निवास अयोध्या नगर है। वह पुरी (वृता) रक्षित है (हि+अमृतेन) मुक्तियों से। यहाँ अमृत शब्द मुक्ति वाचक है।

प्रजा बसत चहूँ फेर, मध्य नृपति मन्दिर विसद।
तासु सुछबि हिय हेरि, विष्णु सदन फीको लगै॥८६।

भावार्थ :—नगरके मध्यमें श्रीअयोध्या नरेन्द्र शिरोमणि जूका जीर्णताशीर्णता रहित दिव्य राजभवन है। श्रीअयोध्या राजसदनकी शोभा देखकर जीमें भगवान विष्णुका वैकुण्ठान्त-र्गत मणिमय भव्य भवन भी फीका लगता है। राजमहलके चतुर्दिक चारो वर्णोंकी प्रजाओंके निवास गृह हैं।

सौध सप्तमें द्वार, अपवर्गादिक चारि यह।
खड़े रहत चोपदार, और न कछु तहँ काज तेहि॥८७॥

शब्दार्थ :—सौध (सुधा+अण्)= अमृतोपम सुख सम्पन्न राजमहल। अपवर्गादिक चारि=त्यागवैराग्य, योग, ज्ञान मोक्ष। चोपदार=द्वारपाल।

भावार्थ :—सप्तावरणमय राजमहलके बाहरी अन्तिम वाले आवरण के चारो दिशावाले सिंहद्वारोंपर, क्रमशः वैराग्य योग, ज्ञान और मोक्ष द्वारपालके रूपमें पहरेपर खड़े रहते हैं। शुष्क होनेके कारण रसदेशके लिये ये सर्वथा अनुपयुक्त हैं। सरस सेवा इनसे क्या ली जाय ? सेवा प्राप्तिके लिये बहुत गिरगिराने पर द्वार रक्षामात्र का सेवा भार दिया गया है।

उमा रमा ब्रह्मानि, सिया महल सेवत सदा।
शारद चतुर सुजानि, नित कृत चरित सुगावही ॥८८॥

भावार्थ :—श्रीमैथिलीजूके राजमहलमें श्रीराघवेतर पुरुष का गम नहीं है। केवल महिलाएँ वहाँ की सेविकाएँ हैं। त्रिदेव पत्नियाँ, श्रीपार्वती, श्रीलक्ष्मी, श्रीसावित्री ये सभी महल में श्रीसिया ठकुरानी की परिचर्या करती हैं। श्रीसरस्वतीजी सेवा मर्मज्ञ (सुजानि हैं। वाक्चातुरी भी है इनमें। श्रीकनक-भवनकी नित्य-नित्य सुघटित ललित लीलाओंका ये गान करती हैं और गाती हैं (सु) सांस्कृतिक रीतिसे। रागलय तालबद्ध स्वरों में।

भारती करत गुनगान गुञ्ज वल्लकी कै
इन्दिरा सप्रेम सीस केसनि सँवारती।
धनद कुबेर की वधू लै पानिपल्लव में
मौर मीर टारनि कौं मंजु चौर ढारती ॥